ओ३म्

भगवत् - खण्डनम्

महर्षि दयानन्द सरस्वती
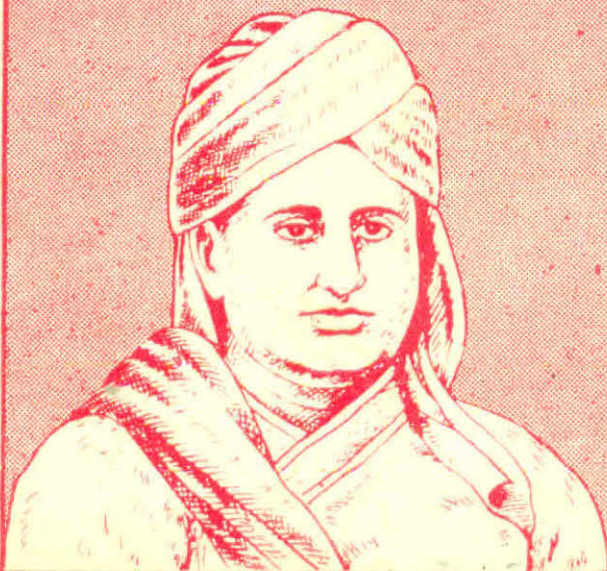
ओ३म्

भागवत-खण्डनम्

(ऋषि दयानन्द लिखित प्रथम खण्डनात्मक ग्रन्थ जो लगभग १०० वर्ष पश्चात् पुनः प्रकाश में आया)

मूल ग्रन्थ के उद्धारक तथा अनुवादक

स्व० पं० युधिष्ठिर मीमांसक

सम्पादक

डॉ० भवानीलाल भारतीय

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

प्रकाशक : **विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द**
4408, नई सड़क, दिल्ली-110 006 (भारत)
दूरभाष: 31023714, 23977216
E-mail : ajayarya@vsnl.com
Web : www.vedicbooks.com

मूल्य : 6 .00 रुपये

संस्करण : 2004

मुद्रक : स्पीडो ग्राफिक्स, दिल्ली-51

BHAGWAT KHANDANAM
by Mahrishi Dayanand Saraswati

सम्पादकीय

(१) श्रीमद्भागवत—ऋषि दयानन्द की दृष्टि में

प्रचलित सनातनधर्म में सामान्यतः, और वैष्णव सम्प्रदाय में विशेषतः, भागवत पुराण को सर्वोपरि मान्यता प्राप्त है। भाषा-शैली तथा काव्य-तत्त्व की दृष्टि से अन्य पुराणों की अपेक्षा भागवत की मान्यता अधिक है। 'विद्यावतां भागवते परीक्षा' की उक्ति प्रसिद्ध है अर्थात् विद्वानों की परीक्षा उनके भागवत-ज्ञान के कारण ही होती है। स्वयं भागवत के लेखक ने ही अपने इस ग्रन्थ को वेदरूपी कल्पतरु का वह सुपक्व फल माना है जो महामुनि शुकदेव के मुख का स्पर्श पाकर अमृतरस से सम्पृक्त हो गया है, उसी प्रकार जिस प्रकार तोते की चोंच से स्पर्श हुआ रसीला आम अपनी मधुरता प्रमाणित करता है। इसी तर्क के आधार पर भागवतकार रसिक भावुकों को भागवतरूपी रस का पान करने के लिए प्रेरित करता है—

> **निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्,**
> **शुकमुखादमृतद्रव - संयुतम्।**
> **पिबत भागवतं रसमालयं**
> **मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥**
>
> १/१/१३

भागवत नाम से प्रसिद्ध पुराण, पौराणिकों में विवाद का विषय भी रहा है। वैष्णवों का आग्रह है कि श्रीमद्भागवत ही महापुराण

संज्ञावाला है जबकि शाक्त लोग 'देवीभागवत' को महापुराणों में गिनते हैं। कृष्णचरित के मार्मिक समालोचक बंकिमचन्द्र चटर्जी ने इस सम्बन्ध में लिखा है—"भागवत के पुराण होने के बारे में बड़े झगड़े हुए हैं। शाक्त कहते हैं कि यह पुराण ही नहीं है, 'देवी-भागवत' ही भागवत पुराण है। वे लोग 'भगवत इदं भागवतम्' न कहकर 'भगवत्या इदं भागवतम्' यह अर्थ करते हैं।"[१] ऋषि दयानन्द ने भी अपने 'भागवतखण्डनम्' नामक ग्रन्थ में इसी मत को मान्यता दी है। वे लिखते हैं—"श्रीमद्भागवतं पुराणं नाम किमस्ति? कुतः सन्देहः? द्वे भागवते श्रूयेते—एकं देवीभागवतं, द्वितीयं कृष्णभागवतं चेति। अतो जायते सन्देहः, अनयोः किमस्ति व्यासकृतमिति? देवीभागवतं श्रीमद्भागवतमस्ति व्यासकृतं च, नान्यत्। कुत एतत्? शुद्धत्वाद् वेदादिभ्योऽविरुद्धत्वाच्च। अतएव देवीभागवतस्य श्रीमद्भागवतसंज्ञा, नान्यस्य च भागवतस्य। कुत एतत्? अशुद्धत्वात् प्रमत्तगीतत्वाच्च।" अर्थात् श्रीमद्भागवतपुराण कौन-सा है? यह संदेह क्यों हुआ? इसलिए कि भागवत नाम के दो पुराणों के बारे में सुनते हैं—एक देवी भागवत है तो दूसरा कृष्ण भागवत। इसलिए सन्देह होता है कि इनमें कौन-सा व्यास का बनाया है? निश्चय ही देवी भागवत ही व्यास का बनाया है और वही श्रीमद्भागवत कहलाने का अधिकारी है इसलिए कि यह शुद्ध है तथा वेदादि शास्त्रों से अविरुद्ध है। कृष्ण भागवत को यह संज्ञा प्राप्त नहीं है क्योंकि वह अशुद्ध है तथा पागलों के गीत की भाँति है। स्वामी दयानन्द ने आगे चलकर उपर्युक्त मत में भी संशोधन कर लिया था जब उन्हें यह निश्चय हो गया कि आज प्रचलित सभी अठारह पुराण तथा अठारह उपपुराण न तो अति प्राचीन हैं और न व्यास द्वारा निर्मित। इनकी रचना विभिन्न लोगों द्वारा समय-समय पर की गई है तथा इनमें साम्प्रदायिक भावों को ही प्रधानता मिली है।

देवी भागवत तथा वैष्णव भागवत का यह झगड़ा काफी पुराना है, क्योंकि स्कन्द पुराण ने भी इसी मत का समर्थन किया है। वहाँ लिखा है—

भगवत्या कालिकायास्तु माहात्म्यं यत्र वर्ण्यते,
नानादैत्यवधोपेतं तद्वै भागवतं विदुः।
कलौ किञ्चिद्दुरात्मानो धूर्ता वैष्णवमानिनः,
अन्यद्भागवतं नाम कल्पयिष्यन्ति मानवाः॥

अर्थात् जिस ग्रन्थ में भगवती कालिका का माहात्म्य वर्णित है तथा उनके द्वारा मारे गए नाना दैत्यों का उल्लेख हुआ है, उसे ही भागवत जानना चाहिए। कलियुग में किन्हीं धूर्त तथा दुरात्मा वैष्णवों ने अन्य ग्रन्थ को बनाकर उसे भागवत के नाम से प्रसिद्ध कर दिया है। यह श्लोक वैष्णवों तथा शाक्तों के द्वेष को ही सिद्ध करता है।

इस विवाद को यहीं पर छोड़कर जब हम भागवत के रचनाकाल पर विचार करते हैं तो पता चलता है कि यह ग्रन्थ अधिक पुराना नहीं है। इससे अधिक पुराने तो कूर्म तथा वराह पुराण बताए जाते हैं। यह पर्याप्त अर्वाचीन काल की कृति है और इसमें भी समय-समय पर बहुत- कुछ जोड़ा तथा घटाया गया है। बंकिमचन्द्र ने भागवत की नवीनता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—"भागवत में बहुत-सी पुरानी बातें हैं पर उसमें नई भी बहुत-सी मिलाई गई हैं। जो पुरानी हैं वे भी नोन-मिर्च लगाकर चटपटी कर दी गई हैं। भागवत और पुराणों की अपेक्षा नया मालूम होता है, अगर ऐसा न होता तो इसके पुराण होने के बारे में इतना झगड़ा क्यों उठता।"[२]

ऋषि दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में भागवत की समीक्षा अत्यन्त विस्तारपूर्वक लिखी है। भागवत-वर्णित

कथाएँ किस प्रकार वदतोव्याघातपूर्ण (Self Contradictory) हैं यह बताने के लिए उन्होंने निम्न उदाहरण दिया—"विष्णु ने ब्रह्मा को वर देते हुए कहा—

भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित्।[३]

अर्थात् 'आप कल्प-कल्पान्तरों में कभी मोहित नहीं होंगे।' परन्तु इसके तुरन्त बाद ही दशम स्कन्ध में कृष्णलीला-वर्णन प्रसंग में ब्रह्मा का मोहित होना और उनके द्वारा गोवत्सों के हरण की कथा लिखी गई है।[४] क्या भागवतकार इतना मूर्ख था और उसे इस बात का ध्यान ही नहीं रहा कि इससे पूर्व ही द्वितीय स्कन्ध में वह यह लिख चुका है कि ब्रह्मा कभी मोहित नहीं होंगे, यह वरदान उन्हें विष्णु से प्राप्त हुआ है। इस प्रकार का परस्पर-विरुद्ध कथन कोई बुद्धिमान् नहीं करता।

भागवत-वर्णित अन्य कथाओं की समालोचना भी सत्यार्थप्रकाश में विस्तारपूर्वक की गई है। विष्णु के जय-विजय नामक द्वारपालों का सनकादि ऋषियों द्वारा शापग्रस्त होना और इसी हेतु से आगे विष्णु के विभिन्न अवतारों की कल्पना।[५] हिरण्याक्ष द्वारा पृथ्वी को चटाई के समान लपेटकर सो जाने पर स्वामी जी ने मार्मिक टिप्पणी की है—"इन पोपों से कोई पूछे कि पृथ्वी गोल है या चटाई के समान?" और वे निष्कर्ष निकालते हैं—"पौराणिक लोग भूगोल विद्या के शत्रु हैं।"[६] भागवत में असम्भव और असंगत कथाओं की प्रचुरता है। वायुवेग से दौड़नेवाले घोड़ों के रथ में बैठकर अक्रूर का मथुरा से गोकुल तक का स्वल्प मार्ग दिन-भर में तय करना, ऐसी मिथ्या कथाओं का एक जीता-जागता उदाहरण है। पूतना के कोसों लम्बे शरीर का विस्तार तथा पापी अजामिल के उद्धार की कथाएँ भी इसी कोटि की हैं।

स्वामी दयानन्द के अनुसार भागवत का रचयिता बोपदेव नाम का पण्डित था जिसका लिखा 'मुग्धबोध व्याकरण' प्रसिद्ध है। बोपदेव-रचित हिमाद्रि ग्रन्थ से यह संकेत मिलता है कि इसी लेखक ने व्यास के नाम से इस पुराण की रचना की है। बंकिमचन्द्र ने भी इस प्रसंग में लिखा है—"लोग कहते हैं कि भागवत बोपदेव का बनाया है। बोपदेव देवगिरि के राजा हेमाद्रि के सभासद् थे। ये तेरहवीं शताब्दी में हुए थे। पर बहुत-से हिन्दू भागवत को बोपदेव का बनाया नहीं मानते हैं। वैष्णवों का कहना है कि द्वेषी शाक्तों ने यह बात उठाई है।"[९] चाहे कुछ भी हो, बोपदेव ने श्रीमद्भागवत पर मंत्री हिमाद्रि के सन्तोष के लिए 'हिमाद्रि' नाम से ही एक व्याख्या-ग्रन्थ लिखा था। मधुसूदन सरस्वती ने इस ग्रन्थ पर हरिलीलामृत नामक एक व्याख्या-ग्रन्थ लिखा है। इससे स्वामी दयानन्द के मत का औचित्य सूचित होता है।

सत्यार्थप्रकाश में भागवत-खण्डन का प्रकरण स्थालीपुलाक-न्याय से ही लिखा गया है, अन्यथा यदि उसकी विस्तृत आलोचना में लेखक प्रवृत्त होता तो ग्रन्थ का कलेवर बहुत बढ़ जाता। भागवत में कृष्ण के अमल, धवल, निष्कलंक जीवन पर जो मिथ्या लांछन लगाए गए हैं उन्हें स्वामी दयानन्द कभी क्षमा नहीं कर सके। इस प्रसंग में वे लिखते हैं—"देखो, श्रीकृष्ण का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण ने जन्म से मरण-पर्यन्त बुरा कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा; और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाए हैं।"[१०] रासलीला आदि का सांकेतिक उल्लेख करने के पश्चात् सत्यार्थप्रकाशकार कहते हैं—"जो यह भागवत नहीं होता तो

श्रीकृष्ण के सदृश महात्माओं की झूठी निंदा क्यों होती?" इस कथन से लेखक की अन्तर्वेदना का पता चलता है। निश्चय ही वह भागवतादि पुराणों की कटु आलोचना द्वेषवश नहीं करता, किन्तु इसलिए करता है कि इन ग्रन्थों में हमारे देश के महान् पुरुषों तथा देवता कोटि के लोगों की निंदा-कुत्सा भरी पड़ी है। कृष्ण जैसे आर्य संस्कृति के ज्योतिष्मान् केन्द्र को भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणों में परकीया भाववाली गोपियों तथा राधा के जार-भाव का आलम्बन बनाकर जिस विकृत रूप में पेश किया गया है उसे देखकर स्वामी दयानन्द जैसे संस्कृतिरक्षक पुरुषों का रोषान्वित होना स्वाभाविक ही था।

सत्यार्थप्रकाश से भिन्न अपने अन्य ग्रन्थों में भी स्वामी दयानन्द ने भागवत की आलोचना करने का कोई अवसर छोड़ा नहीं है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के ग्रन्थ प्रामाण्याप्रामाण्य विषय में उन्होंने जहाँ मिथ्या ग्रन्थों की गणना की है वहाँ ब्रह्मवैवर्त तथा भागवतादि पुराणों को अनार्ष तथा अपाठ्य बताया है। स्वामिनारायण मत के खण्डन में ऋषि दयानन्द ने 'शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण' नामक ग्रन्थ लिखा था। इसमें स्वामी सहजानन्द द्वारा प्रवर्तित इस मत के मान्य ग्रन्थ शिक्षापत्री की कारिकाओं को उद्धृत कर ऋषि ने संस्कृत तथा हिन्दी दोनों में नारायण मत का खण्डन किया है। शिक्षापत्री की ९३वीं कारिका स्वामिनारायण मत के मान्य ग्रंथों को गिनाती है। इसमें कहा गया है कि वेदव्यास के वेदान्त-सूत्र, भागवत पुराण तथा महाभारत में आए विष्णुसहस्रनाम को हम प्रमाण मानते हैं।[११] स्वामी जी ने स्वामिनारायण-मत-प्रवर्त्तक की इस मान्यता को अशुद्ध ठहराया है। जब ९८वीं कारिका में भागवत के पञ्चम तथा दशम स्कन्ध को विशेष महत्त्व देने की बात इसलिए कही कि इसमें कृष्णलीला

का वर्णन है[१२] तो इसका प्रतिवाद करते हुए स्वामी दयानन्द ने लिखा—"सर्वेभ्यश्चैव स्कन्धेभ्योऽतीवाशुद्धस्य मिथ्याभूताधर्म-कथा प्रतिपादकस्य दशम-स्कन्धस्य सर्वाधिकतया स्वीकाराद् विषयासक्तो वेदनिन्दकोऽपि सहजानन्दोऽस्तीति विज्ञायते।" अर्थात् सहजानन्द भागवत के भ्रष्ट, मिथ्याभूत-प्रेत, अधर्मकथा-प्रतिपादक दशम स्कन्ध को सर्वशास्त्रों की अपेक्षा श्रेष्ठ मानता है, अतएव जान पड़ता है कि सहजानन्द वेदनिन्दक (नास्तिक) था।

शिक्षापत्री की ९९वीं कारिका में सहजानन्द ने भागवत के दशम स्कन्ध में भक्तिशास्त्र तथा पञ्चम स्कन्ध में योगशास्त्र की अवस्थिति बताई।[१३] इसके प्रतिवाद में ऋषि लिखते हैं—"दशमस्कन्धे भक्तिशास्त्रस्य लेशोऽपि नास्ति। किन्तु व्यभिचाराद्यधर्मप्रतिपादनं तत्रास्त्येव प्रसिद्धम्। पञ्चम स्कन्धे योगशास्त्रप्रतिपादनं नास्ति, किन्तु योगाभासप्रतिपादनं तु तत्रास्त्येव।" अर्थात् भागवत के दशम स्कन्ध में भक्ति लेशमात्र नहीं है, किन्तु व्यभिचार आदि अधर्म का प्रतिपादन है। पाँचवें स्कन्ध में योगशास्त्र का प्रतिपादन तो किया नहीं, किन्तु योगाभास का प्रतिपादन किया है।

(२) ऋषि दयानन्द के जीवन में आए भागवत-विषयक प्रसंग

उपर्युक्त विवेचन में हमने ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों की अन्तःसाक्षी के आधार पर उनके भागवत-विषयक आलोचनात्मक विचारों की जानकारी प्राप्त की है। अब हम उनके जीवन में आई इन घटनाओं और प्रसंगों की चर्चा करेंगे जिनसे महाराज की भागवत के बारे में घोर विरक्ति तथा अनास्था का पता चलता है। यह तो एक प्रसिद्ध तथ्य है कि ऋषि दयानन्द की शास्त्रीय शिक्षा आर्षविद्या के निष्ठावान् प्रचारक तथा साम्प्रदायिक अनार्ष ग्रन्थों

के प्रति घोर विकर्षण रखनेवाले दण्डी विरजानन्द के चरणों में हुई थी। दण्डी विरजानन्द ने मथुरा को अपना कर्मक्षेत्र बनाया था जो वैष्णव सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र है, जहाँ पग-पग पर वैष्णव मंदिर हैं तथा गली-गली में भागवतपाठी पण्डितों का निवास है। वैष्णवों में व्याप्त अनाचारों तथा उनकी वेदविरुद्ध आस्थाओं से दण्डी जी सुपरिचित थे। गुरु के वैष्णवों के प्रति ये उग्र भाव तथा विचार शिष्य दयानन्द में भी संक्रमित हुए तथा उन्होंने अपने अध्ययन को समाप्त कर कर्मक्षेत्र में प्रवेश करते ही वैष्णव मत तथा उसके आधार-ग्रन्थ भागवत के खण्डन को अपना मुख्य कार्यक्रम बनाया। वि० सं० १९१८ के आरम्भ में दण्डी जी ने आगरा जाकर तत्कालीन वायसराय द्वारा आयोजित शाही दरबार में सम्मिलित जयपुर के महाराजा सवाई रामसिंह से भेंट की थी। उस समय उन्होंने नरेश से स्पष्ट कहा था कि वे एक सार्वभौम पण्डित सभा का आयोजन करें जिसमें उपस्थित होकर वे (दण्डी जी) मनुष्यकृत ग्रन्थों की अशुद्धता तथा अप्रामाणिकता सिद्ध करेंगे। इन अनार्ष (मनुष्यकृत) ग्रन्थों में उन्होंने 'कौमुदी मनोरमा' आदि व्याकरण-ग्रन्थों, न्यायमुक्तावली तथा पञ्चदशी आदि दर्शनग्रन्थों के साथ भागवत आदि पुराणों को भी नवीन साम्प्रदायिक ग्रन्थ बताया था। (द्रष्टव्य—देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय लिखित विरजानन्द-चरित)

मथुरा में गुरु से विदा लेकर स्वामी दयानन्द आगरा आए और वहाँ लगभग दो वर्ष रहकर ग्वालियर पहुँचे। उस समय ग्वालियर-नरेश महाराजा जियाजीराव सिंधिया ने भागवत के १०८ पारायणों का बृहत् आयोजन किया था। जब महाराजा ने स्वामी जी से भागवत-पाठ के बारे में उनकी सम्मति जाननी चाही तो ऋषि ने स्पष्ट कह दिया कि अनार्ष ग्रन्थ की कथा का फल दुःख

और क्लेश के सिवा और क्या हो सकता है! इस स्पष्ट कथन के उपरान्त भी महाराज सिंधिया अपने निर्धारित कार्यक्रम से विरत नहीं हुए। इसे तो संयोग ही कहा जाएगा कि इधर तो भागवत पुराण का पाठ समाप्त हुआ और उधर नगर में विशूचिका की भयंकर महामारी फैल गई। लोगों को यह समझने में देर नहीं लगी कि भागवतपाठ का कोई शुभ परिणाम दिखाई नहीं देता।

१८६७ ई० की पहली मार्च को स्वामी जी हरिद्वार आते हैं। इस समय वहाँ कुम्भ का मेला लगा हुआ था। स्वामी जी ने सप्त सरोवर के निकट फूस की एक कुटिया बनाई और उसके बाहर पाखण्ड खण्डनी पताका गाड़ दी। जब वे इसी कुटिया में एक दिन मौन धारण किए बैठे थे तो किसी भागवतपाठी पण्डित ने इस पुराण के प्रति उनकी विपरीत भावना को जानकर मात्र उन्हें चिढ़ाने के लिए ही कुटिया के बाहर आकर भागवत की प्रशंसा का श्लोक पढ़ा।[१४] भागवत के इस अनावश्यक स्तुतिगान को सुनकर दयानन्द का मौनव्रत भंग हो गया। कुटिया से बाहर आकर उन्होंने अस्खलित धारावाही संस्कृत में भागवत का खण्डन करना आरम्भ कर दिया। (द्रष्टव्य—नवजागरण के पुरोधा : दयानन्द सरस्वती, पृ० १०) चैत्र १९२५ वि० में स्वामी जी की एक अन्य भागवतपाठी पण्डित अंगदराम शास्त्री से सोरों (शूकरक्षेत्र) में भेंट हुई। जब भागवत की चर्चा चली तो स्वामी जी ने भागवत के नवम स्कन्ध के प्रथम श्लोक—

कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः।
राज्ञां चोऽभयवंशानां चरितं परमाद्‌भुतम्॥

को उद्धृत किया और कहा कि इसमें 'विस्तार' शब्द अशुद्ध है, 'विस्तर' होना चाहिए। अपने कथन की सिद्धि में उन्होंने अष्टाध्यायी के प्रमाण दिए तथा 'विस्तरेण व्याख्याता,' 'अलम्

अति विस्तरेण' आदि के प्रयोगों की ओर उक्त पण्डित जी का ध्यान आकृष्ट किया। पं० अंगदराम ने स्वामी जी के विचारों की सत्यता को स्वीकार किया।

सोरों में ही स्वामी जी की भेंट होलीपुरा (जिला आगरा) के निवासी वैद्यराज चौबे रामदयाल से हुई। वार्तालाप के प्रसंग में चौबे जी ने संजीवनी नामक किसी इतिहास-ग्रन्थ का हवाला देकर बताया कि कालिदास के समय में केवल १० पुराण ही थे जब कि अब अठारह मिलते हैं। इसी संजीवनी में लिखा है कि उस समय भागवत पुराण का अस्तित्व ही नहीं था।[१५] ऋषि ने सत्यार्थप्रकाश के ११वें समुल्लास में इस प्रसंग को इस प्रकार लिखा है—"राजा भोज के राज्य में व्यास जी के नाम से मार्कण्डेय और शिवपुराण किसी ने बनाकर खड़ा किया था। उसका समाचार राजा भोज को विदित होने पर उन पण्डितों को हस्तच्छेदनादि दण्ड दिया और उनसे कहा कि जो काव्यादि ग्रन्थ बनावें तो अपने नाम से बनावें, ऋषि-मुनियों के नाम से नहीं। यह बात राजा भोज के बनाए संजीवनी नामक इतिहास में लिखी है, जो ग्वालियर राज्य के भिण्ड नामक नगर के तिवाड़ी ब्राह्मणों के घर में है, जिसको लखुना के राव साहेब और उनके गुमाश्ते रामदयाल चौबे जी ने अपनी आँखों से देखा है।"[१६] इस प्रमाण से यह सिद्ध होता है कि पुराण-नामधारी ग्रन्थों का रचनाकाल तो अर्वाचीन है ही, उनमें समय-समय पर लोगों ने प्रक्षेप भी किए हैं।

भागवत-सम्बन्धी एक अन्य प्रसंग १९२९ वि० का पटना का है। स्वामी जी से भेंट करने तिरहुत (बिहार) का एक पण्डित आया। दोनों में संस्कृत में वार्तालाप होने लगा तो पण्डित ने अपने कथन के समर्थन में भागवत का प्रमाण दिया। स्वामी जी ने इसको

अप्रामाणिक ठहराया। इससे प्रतिपक्षी पण्डित को पीड़ा तो हुई, किन्तु वह यह कहने से भी नहीं चूका कि महाराज, खण्डन करना तो आसान है किन्तु भागवत के सदृश काव्यपूर्ण श्लोक-रचना करना किसी के लिए सम्भव नहीं है। इस पर स्वामी जी ने स्पष्ट किया कि केवल काव्य-गुण-सम्पन्न होने से ही कोई रचना धर्म-विषय में प्रमाण नहीं हो जाती। उन्होंने आगे कहा—आप तो भागवत के १८००० श्लोकों पर मुग्ध हैं। मैं ऐसे १८ हजार नहीं, ३८ हजार श्लोक बना सकता हूँ। फिर उन्होंने उक्त पण्डित से कहा—आप लिखते रहें, मैं जूता और खड़ाऊँ का संवाद भागवत के श्लोकों की शैली में लिखाता हूँ। मेरे श्लोक भी उतने ही मधुर और कोमल होंगे। स्वामी जी की इस श्लोक-रचना तथा उसकी गुणवत्ता को देखकर तिरहुती पण्डित आश्चर्यचकित रह गया। बाद में पता चला कि यह पण्डित संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् तथा 'शिवराजविजय' के लेखक पं० अम्बिकादत्त व्यास थे।

बदायूँ (उत्तर प्रदेश) में स्वामी जी का आगमन १८७९ के जुलाई मास में हुआ। १ अगस्त, १८७९ के दिन स्वामी जी की सेवा में अनेक सत्संगी तथा आर्यसमाज के सदस्य उपस्थित थे। भागवत पुराण की चर्चा चली तो स्वामी जी ने कहा—"भागवत में श्रीकृष्ण (जो एक बड़े विद्वान् महात्मा पुरुष थे) की निंदा की गई है। यद्यपि महाभारत के देखने से विदित होता है कि वे बड़े बुद्धिमान् और सदाचारी थे और जो-जो अश्लील बातें उनके बारे में भागवत में लिखी गई हैं वे महाभारत में बिल्कुल नहीं हैं।"

जब एक भागवत-प्रेमी ने उन्हें 'विद्यावतां भागवते परीक्षा' की उक्ति सुनाई तो स्वामी जी ने अपनी वाक्पटुता दिखलाते हुए तुरन्त कह दिया—'विद्यावतां भागवतेऽपरीक्षा'। उपर्युक्त सभी प्रसंग इस तथ्य के साक्षी हैं कि ऋषि दयानन्द की दृष्टि में भागवत

एक ऐसा अनार्ष ग्रन्थ है जिसकी शिक्षाएँ वेदविरुद्ध तो हैं ही, शील, सदाचार तथा नैतिक आचरण के विपरीत भी हैं। इसी तथ्य को अनुभव कर अपने उपदेशक-काल के आरम्भ में ही उन्होंने 'भागवतखण्डन' नामक अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखा जिसका ऐतिहासिक विवरण आगे दिया जा रहा है।

पाद-टिप्पणियाँ

१. श्रीकृष्णचरित, पृ० ९९ पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी द्वारा बंगला से अनूदित।
२. उक्त ग्रन्थ, पृ० १००
३. श्रीमद्भागवत २।९।३६ (स्कन्ध, अध्याय तथा श्लोक-संख्या)
४. उक्त ग्रन्थ १०।१३-१४ अध्याय
५. उक्त ग्रन्थ ३।१५-१६ अध्याय
६. सत्यार्थप्रकाश—११वाँ समुल्लास
७. उक्त ग्रन्थ १०। छठा अध्याय
८. उक्त ग्रन्थ ६। अध्याय २९-३०
९. श्रीकृष्णचरित्र, पृ० ७६
१०. सत्यार्थप्रकाश-११वाँ समुल्लास
११. वेदाश्च व्याससूत्राणि श्रीमद्भागवताभिधम्।
    पुराणं भारते तु श्री विष्णोर्नामसहस्रकम्॥
१२. श्रीमद्भागवतस्यैव तु स्कन्धौ दशमपञ्चमौ।
    सर्वाधिकतया ज्ञेयौ कृष्णमाहात्म्यबुद्धये॥
१३. दशमः पंचमः स्कन्धो याज्ञवल्क्य च स्मृतिः।
    भक्तिशास्त्रं योगशास्त्रं धर्मशास्त्रं क्रमेण च॥
१४. पूर्वोद्धृत श्लोक 'निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्' (१।१।१३)

१५. पं० लेखराम-रचित महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित
१६. सत्यार्थप्रकाश—११वाँ समुल्लास

(३) भागवत खण्डन—एक ऐतिहासिक परिशीलन

भागवत-खण्डन अपरनाम 'वैष्णव मत खण्डन' ऋषि दयानन्द की दिव्य लेखनी से प्रसूत द्वितीय ग्रन्थ है। इससे पूर्व १८६३ ई० (१९२० वि०) में उन्होंने आगरे में संध्या नामक एक लघु पुस्तक लिखी थी। इसके अन्त में लक्ष्मी-सूक्त था तथा उसका मूल्य मात्र एक आना था। आगरा के ही एक सज्जन महाशय रूपलाल ने इसके मुद्रण का व्यय डेढ़ हजार रुपया दिया था। इसका यह संस्करण तीस हजार का था। संध्या की यह पुस्तक बिना मूल्य वितरित की गई थी। आज यह पुस्तक कहीं भी उपलब्ध नहीं है।

इसके तीन वर्ष बाद वि० सं० १९२३ में स्वामी जी ने वैष्णव सम्प्रदाय के प्रमुख ग्रन्थ श्रीमद्भागवत के खण्डन में एक अन्य पुस्तक संस्कृत में लिखी। पं० लेखराम ने स्वरचित महर्षि के जीवन-चरित में इसका उल्लेख करते हुए लिखा है कि सात पृष्ठ की यह पुस्तक संस्कृत भाषा में भागवत-खण्डन विषय पर लिखी है। पं० लेखराम ने इसकी एक हस्तलिखित प्रति किशनगढ़ (जिला अजमेर) के निवासी पं० छगनलाल श्रीमाली के पास रखी थी जिस पर लेखन की तिथि द्वितीय ज्येष्ठ ९, गुरुवार, सं० १९२३ वि० ([illegible] जून, १८६६) अंकित थी। पं० युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार यह तिथि पुस्तक की प्रतिलिपि करने का संकेत है, न कि मूल ग्रन्थ के लिखे जाने का। निश्चय ही यह स्वामी जी द्वारा लिखी मूल पुस्तक की निजी प्रयोग के लिए तैयार की गई पाण्डुलिपि ही थी। भागवत-खण्डन की प्रतियाँ भी बड़ी

संख्या में छपी थीं जिन्हें स्वामी जी ने पहले तो आगरे में बाँटा, तत्पश्चात् हरिद्वार के कुम्भ के मेले में बिना मूल्य वितरण किया। यह कुम्भ का मेला वि० सं० १९२४ (अप्रैल १८६७ ई०) में हरिद्वार में भरा था। छपी पुस्तक का आकार १८×२२ था और कुल पृष्ठ-संख्या ७ थी। ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त तथा उनके पत्रों, विज्ञापनों तथा पुरातात्त्विक महत्त्व के अन्य दस्तावेजों के गवेषक खतौली (जिला मुजफ्फरनगर) निवासी स्व० मामराजसिंह जी ने फर्रुखाबाद से बड़े परिश्रमपूर्वक इसकी प्रति तलाश की जो वर्षों तक प्रसिद्ध भारतविद्याविद् वैदिक विद्वान् पं० भगवद्दत्त जी के मॉडल टाउन लाहौर-स्थित निवास के पुस्तक-संग्रह में रही। देश-विभाजन के समय पं० भगवद्दत्त जी का यह बहुमूल्य पुस्तक-संग्रह लाहौर में रह गया और नष्ट भी हो गया।

इस प्रकार ऋषि दयानन्द-रचित यह अद्भुत ग्रन्थ पाठकों तक पहुँच ही नहीं सका। वि० २०१८ (1961 ई०) में जब पं० युधिष्ठिर मीमांसक किसी कार्यवश काशी गए और वहाँ रामलाल कपूर ट्रस्ट के पुस्तकालय में पुरानी पुस्तकों की छानबीन करने लगे तो अचानक उनकी दृष्टि 'पाषंडिमुखमर्दन' शीर्षक एक लघु पुस्तक पर पड़ी। यह इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) निवासी किसी विश्वेश्वरनाथ गोस्वामी ने लिखी थी और मुरादाबाद के सुदर्शन प्रेस में लीथो तकनीक से इसे मुद्रित किया गया था। २०×२६ आकार के ६२ पृष्ठों में समाप्त इस पुस्तक में स्वामी दयानन्द की भागवत-खण्डन पुस्तक को अक्षरशः उद्धृत कर उसका खण्डन उस लेखक ने किया था। इस प्रकार ऋषि का यह अद्वितीय ग्रन्थ दुबारा हमें प्राप्त हो गया। पं० युधिष्ठिर जी ने २०१८ वि० में इसे मूल संस्कृत तथा उनके द्वारा किये गए हिन्दी-अनुवाद के साथ प्रकाशित किया। इस पुस्तक को पढ़ने से यह विदित हो जाता है

कि उस समय श्री महाराज को मात्र कृष्ण-भागवत का खण्डन करना ही अभीष्ट था, अन्य पुराणों में उनकी आस्था यथावत् थी जो आगे चलकर समाप्त हो गई और वे प्रचलित सभी अठारह पुराणों को अनार्ष, अप्रामाणिक तथा वेदविरुद्ध मान्यताओं का पुञ्ज मानने लगे। भागवत-खण्डन में वे मार्कण्डेय पुराण तथा बृहन्नारदीय पुराण को प्रमाण रूप में पेश करते हैं तथा ग्रन्थान्त में वेद, उपवेद, वेदांग, मनुस्मृति, महाभारत तथा वाल्मीकिकृत रामायण के साथ हरिवंश पुराण को पढ़ने-पढ़ाने की संस्तुति करते हैं। इस ग्रन्थ की भाषा सरल तथा तर्कपूर्ण है। इसे महाराज ने मध्यकालीन संस्कृत-निबंधों की शैली में लिखा है। यहाँ हम भागवत खण्डन मूल, पं० युधिष्ठिर मीमांसककृत भाषानुवाद और पाद-टिप्पणियाँ तथा परिशिष्ट-रूप में भागवत-खण्डन तथा सत्यार्थप्रकाश की तुलना को यथातथ प्रस्तुत कर रहे हैं।

मार्गशीर्ष पूर्णिमा २०५५ वि.
नन्दनवन जोधपुर

—डॉ० भवानीलाल भारतीय
संस्थापक अध्यक्ष
दयानन्द अध्ययन संस्थान

ओ३म्

अथ भागवतखण्डनम्

श्रीमद्भागवतं पुराणं नाम किमस्ति ? कुतः सन्देहः ? द्वे भागवते श्रूयेते। एकं देवीभागवतं द्वितीयं कृष्णभागवतं चेति। अतो जायते सन्देहः, अनयोः किमस्ति व्यासकृतमिति ? देवीभागवतं श्रीमद्भागवतमस्ति व्यासकृतं च, नान्यत्। कुत एतत् ? शुद्धत्वाद् वेदादिभ्योऽविरुद्धत्वाच्च। अत एव देवीभागवतस्य श्रीमद्भागवतसंज्ञा, नान्यस्य च भागवतस्य। कुत एतत् ? अशुद्धत्वात् प्रमत्तगीतत्वाच्च।

भावार्थः

श्रीमद्भागवत नाम का पुराण कौन-सा है ? यह सन्देह क्यों हुआ ? दो भागवत नाम के पुराण सुनाई देते हैं (उपलब्ध होते हैं)। एक 'देवी भागवत' और दूसरा 'कृष्ण भागवत'। इसलिए सन्देह होता है कि इनमें कौन-सा व्यासकृत है।[1] 'देवी भागवत' ही श्रीमद्भागवत है और वही व्यासकृत है, अन्य नहीं। यह क्यों ? शुद्ध होने से और वेदादि से अविरुद्ध होने से। इसीलिए देवी भागवत की ही श्रीमद्भागवत संज्ञा है, अन्य भागवत की नहीं। यह क्यों ? अशुद्ध होने से और प्रमत्तगीत (=प्रमादी पुरुष का कहा) होने से।

१. **पुराणों की संख्या अठारह मानी जाती है। दोनों भागवतों की गणना करने पर १९ पुराण-संख्या हो जाती है। इसलिए गणना में एक ही भागवत का समावेश हो सकता है, चाहे वह देवी भागवत हो, चाहे कृष्ण भागवत।**

किञ्च तत्—

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयाद् इतरश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्[1]

इत्यादि निर्मितं यत्। कुत एतदशुद्धम् ? वेदादिभ्यो विरोधात्। कोऽस्ति विरोधः ? सर्वमेव विरुद्धम्। कथम् ?

न नानार्थं न भिन्नार्थं नासंहृतं न चाधिकम्।
न न्यूनं कष्टशब्दं च व्युत्क्रमाभिहितं न च॥
नासत्यमतिसत्यं वा सूक्ष्मं सत्यप्रयोजनम्।
एतद् दशदोषरहितं वाक्यमुच्चार्यं लेखनीयं च॥[2]

इत्युक्तं मार्कण्डेयपुराणे[3]। एतद्दोषवदस्ति प्रमत्तगीतं

वह (=अशुद्ध और प्रमत्तगीत) क्या है ? **जन्माद्यस्य॰** इत्यादि निर्मित जो [कुछ है वह सभी अशुद्ध है]। यह अशुद्ध क्यों है ? वेदादि से विरोध होने के कारण। कौन-सा विरोध ? सब-कुछ ही विरुद्ध है। कैसे ? '**अनेक अर्थोंवाला, भिन्न अर्थवाला, संक्षिप्त, अधिक, न्यून, क्लिष्ट शब्द, उलटे क्रम से कथित, असत्य, अतिसत्य, सूक्ष्म सत्य प्रयोजनवाला, इन दश दोषों से रहित वाक्य ही उच्चारण करना और लिखना चाहिए**' ऐसा कहा है मार्कण्डेय पुराण में। इन दोषों से युक्त है प्रमादी पुरुष का कहा हुआ भागवत। इसलिए यह

१. **भाग॰ स्कन्ध १, अध्याय १, श्लोक १। अग्रे सर्वत्र संख्यानिर्देश एव करिष्यते। तत्र यथाक्रमं स्कन्धाध्यायश्लोकसंख्या विज्ञेया।**

२. **तुलना कार्या—महाभारत शान्ति॰ ३२०। ८७-८९—अभिन्नार्थम्, न चाधिकम्, नाश्लक्ष्णम्, न सन्दिग्धम्, न गुर्वक्षरसंयुक्तम्, न पराङ्मुखमुखम्, नानृतम्, न त्रिवर्गेण विरुद्धम्, नाप्यसंस्कृतम्, न न्यूनम्, न कष्टशब्दम्, न विक्रमाभिहितम्, न शेषम्, न अनुकल्पेन युक्तम्, न निष्कारणम्, न अहेतुकम्।**

३. **अत्र मार्कण्डेयपुराणनाम्नोद्धृतौ दशदोषनिदर्शकौ श्लोकौ मार्कण्डेयपुराणे नोपलब्धावस्माभिः। मार्कण्डेयपुराणे (१।१८) 'मार्कण्डेयः....दशाष्टदोषरहितो वक्तुम्' निर्देश उपलभ्यते। स्कन्दपुराणे कुमारिकाखण्डे पञ्चचत्वारिंशत्तमेऽध्याये (बाङ्गसंस्करणे) 'नवभिर्नवभिश्चैव विमुक्तं वाग्विदूषणैः। नवभिर्बुद्धिदोषैश्च वाक्यं**

भागवतम्, अतोऽकथनीयमश्रवणीयं च।

कथं तर्हि? शुक उक्तवान् इदं भागवतं परीक्षितं प्रति[१] इति? नोक्तवान्। कुतो नोक्तवान्? शुकस्तु युद्धात् पुरा मोक्षं प्राप्तवान् इति महाभारते शान्तिपर्वणि लिखितम्[२]। अतोऽशुद्धमेव 'शुकः परीक्षितं प्रत्युक्तवान्' इति। तर्हि छायाशुकेन प्रोक्तमिति? स तु गृहस्थो न नग्नः[३], व्यासप्रोक्तमस्ति न वा[४], नैवाम्बरीषशुकप्रोक्तम्[५]।

नित्यं भागवतं शृणु हयग्रीवशुकप्रोक्तम्।[६]

कथा करने और सुनने योग्य नहीं है।

[यदि इन दोषों से युक्त भागवत है] तो कैसे '**शुक (=व्यास-पुत्र) ने इस भागवत को परीक्षित के प्रति कहा**' ऐसा कहा जाता है? [शुक ने परीक्षित के लिए] नहीं कहा। **क्यों नहीं कहा?** शुक तो [भारत] युद्ध से पूर्व ही मोक्ष को प्राप्त हो गया था, ऐसा महाभारत के शान्तिपर्व में लिखा है। इसलिए अशुद्ध ही है—'शुक ने परीक्षित के लिए

वक्ष्याम्यदोषवत्॥' इत्युक्त्वा अष्टादश वाक्यदोषा नवबुद्धिदोषाश्च विवृताः। अस्मिन्नेव पुराणे प्रभासखण्डे "दशदोषविवर्जितां कथाम्" इति वाक्यं दृश्यते, परन्तु दशवाक्यदोषास्तत्र नोपसंख्यायन्ते।

१. द्र० भाग० १।३।४१-४२॥ तथा भागवत माहात्म्य०, अ० १, श्लोक ११-१३॥

२. अध्याय ३३३। शान्तिपर्वणि शुकस्य मोक्षप्राप्तिकथा निरुक्ता। शान्तिपर्वस्थाः सर्वा एव कथा भारतयुद्धानन्तरं युधिष्ठिरं प्रत्युक्ताः। अतो भारतयुद्धात् प्रागेव शुको मोक्षं प्राप्तवानिति स्पष्टमेव।

३. संन्यासीत्यर्थः।

४. अस्थानेऽयं पाठः प्रतिभाति।

५. भागवतटीकारम्भे श्रीधरेणोक्तम्—'पद्मपुराणे च अम्बरीषं प्रति पुराणवचनम्—अम्बरीषशुकप्रोक्तं नित्यं भागवतं शृणु' इति। मुद्रिते पद्मपुराणे गौतमाम्बरीषसंवादो नोपलभ्यते। तत्त्वसन्दर्भे श्रीजीवगोस्वामिनाऽयं श्लोक उद्धृतः।

६. नोपलब्धमस्माभिः।

'नित्यं भागवतं शृणु' इति सर्वं[१] कथनमशुद्धमेव।

अन्येऽपि दोषाः सन्ति न वा? सन्ति बहवो दोषाः। एकदोषवतोऽपि ग्रन्थस्य प्रामाण्यं न भवति, कुतोबहुदोषवतश्च। तस्मात् स्थालीपोलाकन्यायवत् प्रमादस्तावद्[२] द्रष्टव्यः—

ज्ञानं परमं गुह्यं मे यद् विज्ञानसमन्वितम्।
सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया॥[३]

परमं गुह्यं यदस्ति ज्ञानं तद्विज्ञानमेव भवति, पुनर्विज्ञानसमन्वितमितीदं [विशेषणं] व्यर्थमेव। एवं च चतुश्श्लोक्यशुद्धाऽस्ति।[४]

[भागवत] कहा'। तो छाया शुक ने कहा [होगा], वह तो गृहस्थ था, संन्यासी नहीं। व्यास-प्रोक्त है नहीं, न ही अम्बरीष शुक का कहा है।

नित्यं भागवतं शृणु० इत्यादि में 'नित्य भागवत को सुनो' कहना सारा ही अशुद्ध है।[५]

अन्य भी दोष हैं वा नहीं? बहुत-से दोष हैं। एक दोष से युक्त ग्रन्थ का भी प्रामाण्य नहीं होता, बहुत दोषवाले का कहाँ से होगा? इसलिए स्थालीपुलाक-न्याय से [कतिपय] प्रमाद देखने योग्य हैं—

ज्ञानं परमं गुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम्०। जो परम गुह्य ज्ञान होता है वह विज्ञान ही होता है। अतः पुनः 'विज्ञानसमन्वितम्'

---

१. [illegible] भागवतस्य नित्यं श्रवणं कार्यमित्येकम्, हयग्रीवशुकप्रोक्तं शुकप्रोक्तं वा इत्यपरम्। उभे अपि वचने अशुद्धे इति तात्पर्यम्।

२. 'प्रसादः' इति पूर्वमुद्रितोऽपपाठः।

३. भाग० २।९।३०।

४. भाग० २।९।३१-३४।

५. इस श्लोक में 'भागवत को नित्य सुनो' यह लिखना उसके अशुद्ध होने से ठीक नहीं है और 'हयग्रीव शुक से अथवा शुक से कहा गया' कथन भी इतिहास-विरुद्ध होने से अशुद्ध है। इन दो अशुद्धियों की दृष्टि से 'सर्वम्' (सारा) पद का निर्देश किया है।

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादि०।[१]

यतः कुत इति प्रष्टव्यः? कर्मणो वा कालाद्, आहोस्विद् ईश्वराद् वा, कामाद् आहोस्वित्प्रकृतेर्वा ब्रह्मणः। किञ्चिदपि पूर्वं प्रकृतं न दृश्यते। अत एव सर्वमशुद्धं कथनम्।

भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृभिस्तव।[२]

वसिस्सम्प्रसारणी इति महाभाष्यम्[३]। संवत्सरोषितो भिक्षुः,[४] प्राप्य पुण्य-कृतांल्लोकान् उषित्वा शाश्वतीः

(=विज्ञान से युक्त) कहना व्यर्थ है। इसी प्रकार चतुःश्लोकी (=चार श्लोक) अशुद्ध है।

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयात्०। यहाँ 'यतः' (=जिससे) पद का अभिप्राय प्रष्टव्य है—कर्म से अथवा काल से, अथवा ईश्वर से, काम से अथवा प्रकृति से, अथवा ब्रह्म से? इससे पूर्व कुछ भी प्रकृत (=प्रकरण-निर्दिष्ट) नहीं है। इसलिए यह सब कहना अशुद्ध है।[५]

भिक्षुभिर्विप्रवसिते०। 'वस' [निवासे] धातु सम्प्रसारण कार्यवाली है, ऐसा महाभाष्य में कहा है। **संवत्सरोषितः प्राप्य—उषित्वा०** आदि उदाहरणों [में 'उषित' पद का प्रयोग होने] से 'विप्रवसितः' पद अशुद्ध ही है [अर्थात् 'विप्रोषितः' प्रयोग होना चाहिए]।

---

१. भाग० १।१।१॥
२. भाग० १।६५॥ ममेति पाठः।
३. 'वसिः प्रसारिणी' इति महाभाष्ये (७।२।१०) पाठः।
४. अनुपलब्धमूलम्।
५. सर्वनाम संज्ञक पद का निर्देश पूर्वनिर्दिष्ट पद के स्थान पर ही होता है, यहाँ इस श्लोक से पूर्व कुछ भी प्रकृत नहीं है। अतः 'यतः' सर्वनाम-पद का प्रयोग अशुद्ध है।

समाः[१] इत्युदाहरणाद् विप्रवसित इत्यशुद्धमेव।

कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः[२]।

प्रथने वावशब्दे[३] [इति] शब्दोपाधौ विस्तरः, अन्यत्र विस्तार एव। कोऽस्ति शब्दोपाधिः? कथनश्रवणे। विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन! भूयः कथय०[४], विभूतेर्विस्तरो मया[५], नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे[६], दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु[७], निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद् गदतो मम[८]। एवं सति 'कथितो वंशविस्तारो भवता' इत्यशुद्धमेव।

कथितो वंशविस्तारो०—प्रथने वावशब्दे इस [पाणिनीय नियम से] शब्द अभिधेय होने पर "**विस्तर**" और अन्यत्र "**विस्तार**" [शब्द ही साधु होता है] यहाँ कौन-सी शब्दोपाधि है? कथन और श्रवण [यहाँ सोम-सूर्यवंश का कथन और श्रवण इष्ट है, अतः विस्तार शब्द का प्रयोग अशुद्ध है]। **विस्तरेणात्मनो०, विभूतेर्विस्तरो मया, नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे, दैवो विस्तरशः प्रोक्त० निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद्०** [आदि गीता के श्लोकों में "**विस्तर**" शब्द ही प्रयुक्त हुआ है, इसलिए] ऐसा प्रयोग होने से **कथितो वंशविस्तारो०** [में "**विस्तार**" शब्द का प्रयोग] अशुद्ध ही है।

---

१. गीता ६।४१॥
२. भाग १०।१।१॥
३. अष्टा० ३।३।३३॥
४. गीता १०।१८॥
५. गीता १०।४०॥
६. गीता १०।१९॥
७. गीता १६।६॥
८. अनुपलब्धमूलमिदम्।

निगमकल्पतरोर्गलितम्[1]

इत्यादि—**अत्र वेदनिन्दा कृता हि।** 'पतितम्' इति वक्तव्ये 'गलितम्' **इत्यशुद्धम्**[2]। **एका षष्ठी, द्वे पञ्चम्यौ वाऽत्राशुद्धमेव**[3]। 'शृणुत' इति वक्तव्ये 'पिबत' **इत्यप्यशुद्धमेव।**[4]

नेमं विरञ्चिर्न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप मुक्तिदात्॥[5]

निगमकल्पतरो॰ इस श्लोक में वेद की निन्दा की है[6]। **पतितम्** (=गिरा हुआ) ऐसा कहने के स्थान में **गलितम्** (गला हुआ) कहना अशुद्ध है।[7] एक षष्ठी [=**निगमकल्पतरोः** में] अथवा दो पञ्चमी [=**निगमकल्पतरोः=शुकमुखात्**] का प्रयोग अशुद्ध है।[8] **'शृणुत'** (=सुनो) ऐसी कहने के स्थान में **'पिबत'** (=पीओ) का प्रयोग भी अशुद्ध है।[9]

---

१. भाग॰ १।१।३।
२. तरोः फलं पतति, न तु गलति। अतः 'पतितं फलम्' इत्येव वाच्यम्।
३. एका षष्ठी-निगमकल्पतरोः। द्वे पञ्चम्यौ वा—एका (पक्षान्तरे) निगमकल्पतरोः, द्वितीया—शुकमुखात्। षष्ठीपञ्चम्योरुभयोर्वा पञ्चम्योः परस्परमन्वयाभावाद् अशुद्धत्वं ज्ञेयम्।
४. अस्मिन्नेव श्लोके (१।१।३) उत्तरार्धे 'पिबत' इत्यस्य स्थाने 'शृणुत' इति वक्तव्यम्, भागवतग्रन्थस्य शब्दात्मकत्वात्। नहि शब्दात्मकं केनचित् पातुं शक्यते।
५. भाग॰ १०।९।२०। भागवते 'नेमं विरञ्चो न भवो' इति पाठः।
६. इस श्लोक में भागवत को वेदरूपी वृक्ष का फल=सार कहा है, अर्थात् वेद से भागवत की श्रेष्ठता कही है।
७. फल के वृक्ष से पृथक् होने में 'गिरना' क्रिया का प्रयोग होता है, अतः 'गलना' क्रिया का प्रयोग करना अनुचित है।
८. 'निगमकल्पतरोः' में षष्ठी, तथा 'शुकमुखात्' में पञ्चमी का परस्पर कोई अन्वय नहीं होता। यदि 'निगमकल्पतरोः' में पञ्चमी मानें, तब भी दोनों पञ्चमियों का परस्पर अन्वय नहीं बनता।
९. भागवत ग्रन्थ शब्दरूप है, अतः उसके लिए 'सुनो' क्रिया का ही प्रयोग

अत्रैको नकारो सार्थकः, द्वावनर्थकौ स्तः। निन्दा च कृता ब्रह्मादीनां देवक्यादीनां च।

विप्राद् विषद्गुणयुतादरविन्दनाभपादार-
विन्दमुखाच्छ्वा पदं वरिष्ठम्।[1]

अत्र ब्राह्मणनिन्दा कृता। अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः[2] अस्माद् विरुद्धत्वाद् अशुद्धोऽपि[3]।

क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान्
विरज्येत विना पशुघ्नात्।[4]

नेमं विरञ्चिर्न॰ इसमें एक नकार सार्थक है और दो अनर्थक हैं तथा इसमें ब्रह्मादि देवों और देवकी आदि की निन्दा की है।[5]

विप्राद् विषद्गुणयुताद्॰ इसमें ब्राह्मणों की निन्दा की है।[6] तथा 'मूर्ख लोग मुझ अव्यक्त को व्यक्त (=प्रकट) हुआ मानते हैं, इस [गीता के वचन से] विरुद्ध[7] होने से अशुद्ध भी है।

क उत्तमश्लोक॰ इसमें वेदविहित कर्मों के करनेवालों की निन्दा की है।[8] अर्थापत्ति से वेद की भी निन्दा है। **वेदनिन्दक नास्तिक**

होना चाहिए, न कि 'पीओ' क्रिया का, क्योंकि वह जलवत् द्रव द्रव्य नहीं है।

१. अनुपलब्धमूलमिदम्। २. गीता ७।२४॥
३. गीतायां परब्रह्मणः शरीरग्रहणप्रतिषेध उक्तः, भागवतस्योक्तश्लोके भगवतो नाभिपादाद्यङ्गनिर्देशः कृतः।
४. भाग १०।१।४॥
५. इस श्लोक में निषेधार्थक तीन 'न' हैं। एक 'न' से ही निषेध अर्थ की प्रतीति हो जाने से अगले दो 'न' पदों का प्रयोग चिन्त्य है।
६. इस श्लोक में 'कमलनाभ (विष्णु) के पैर-रूपी कमलों से विमुख अनेक गुणोंवाले विप्र से चाण्डाल को श्रेष्ठ' कहा है। अर्थापत्ति से ब्राह्मणों की निन्दा की है।
७. परमात्मा के अव्यक्त स्वरूप होने से उसके पैर आदि की कल्पना नहीं हो सकती।
८. उक्त श्लोक में कहा है कि 'परम यशस्वी [कृष्ण] के गुणानुवाद से पशुघ्न (=याज्ञिक=यज्ञ करनेवाले) के अतिरिक्त और कौन विमुख हो

अत्र वेदविहितकर्मकर्तॄणां निन्दा कृता,[१] अर्थाद् वेदानामपि। नास्तिको वेदनिन्दकः[२] इत्युक्तं मनुना। अत एवायं भागवतस्यास्य कर्त्ता नास्तिकः।

यद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो यस्मिन्
प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि।[३]

असम्बद्धोऽयं श्लोकः।[४]

होता है।' यह मनु ने कहा है। इसलिए भागवत का कर्ता नास्तिक है।

यद्वाग्विसर्गो० यह श्लोक असम्बद्ध है।[५]

सकता है'। 'पशुघ्न' शब्द का मूल अर्थ 'याज्ञिक' है, जैसे 'गोघ्न' का 'अतिथि'। यथा 'गोघ्न' में गाय की हिंसा अभिप्रेत नहीं है, अपितु उसकी प्राप्ति अभिप्रेत है (घर आए श्रेष्ठ अतिथि को गोदान का विधान है)। अथवा गो शब्द से गौ से निष्पन्न दूध-दही आदि पदार्थ अभिप्रेत होते हैं, क्योंकि अतिथि को मधुपर्क देने का वैदिक विधान है। मधुपर्क गौ के दही आदि से ही बनता है। उसी प्रकार याज्ञिक को भी पशुघ्न इसीलिए कहा जाता है कि वह अपने घर पशुओं का पालन करता है, और उनके घी, दूध, दही से यज्ञ करता है। विना घी-दूध के यज्ञ सम्भव ही नहीं। अतः पशुघ्न=याज्ञिक की निन्दा करने से अर्थापत्ति से वेद की भी निन्दा की है।

१. 'पशुघ्न'शब्दो याज्ञिकानां वाचकः, यथा 'गोघ्न'शब्दोऽतिथीनाम्। यथा गोघ्नपदे गवां हिंसा नाभिप्रेता, अपितु तत्प्राप्तिरेवाभिप्रेता। यद्वा तद्धितप्रयोगाभावेऽपि गोपदेन गोविकाराणां प्राप्तिरुच्यते। आगताया-तिथये मधुपर्क उपाह्रियते, मधुपर्क च गव्यमेव भवति। एवमेव पशुघ्नशब्देनापि पशुप्राप्तिरेवोच्यते। नहि गवादिपश्वभावे किमपि यज्ञकर्म कर्तुं शक्यते, तत्र घृतदुग्धदधीनां प्रयोगविधानात्। अतः पशुघ्नानां याज्ञिकानां निन्दाविधानाद् अर्थापत्त्या वेदनिन्दाऽपि क्रियते।

२. मनु० २।११॥

३. भाग० १।५।११॥ तत्र प्रथमचरणे 'तद् वाग्विसर्गो' इति पाठः।

४. उत्तरार्धे 'नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यच्छृण्वन्ति' इत्युच्यते, पूर्वार्धे च 'वाग्विसर्गः' उच्यते। वाग्विसर्गे श्रवणक्रिया न कथमपि सम्भवति, श्रवणक्रियायां च वाग्विसर्गो न भवितुं शक्नोतीत्यसंबद्धताऽत्र ज्ञेया।

५. इस श्लोक के उत्तरार्ध में 'यशःसमन्वित नामों के श्रवण करने' का

व्यासनारदसंवादे[१] व्यासस्यापि निन्दा कृता—व्यासः शोकातुरोऽभूत्[२], तत्र नारद आगतः[२], पुनर्नारदेन बोधित[३] इति। व्यासस्तु नारायणावतार-[४]स्तस्य कथं शोकः सम्भवेत्?

भस्मासुरकथायां[५] शिवस्यापि निन्दा कृता—भस्मासुरभयाच्छिवः कैलासं विहाय वनं गतवान्, पुनर्विष्णुना रक्षितः। कस्मादपि त्रैलोक्ये भयं न भवति शिवस्य। यदि कश्चिद् ब्रूयाद् दत्तवराय भस्मासुराय दण्डं न दत्तवान्, तर्हि रावणाय

व्यास और नारद के संवाद में व्यास की निन्दा की है—**व्यास जी शोकातुर हो गए थे, वहाँ नारद मुनि पहुँचे और उन्होंने व्यास जी का शोक दूर किया।** व्यास जी नारायण के अवतार [कहे गए हैं[६] तब] उन्हें शोक कैसे हो सकता है?

भस्मासुर कथा में शिव की भी निन्दा की है—**भस्मासुर के भय से शिव कैलास छोड़कर वन में चले गए, विष्णु ने उनकी रक्षा की।** शिव को किसी से भी तीनों लोकों में भय नहीं हो सकता। यदि

विधान है और पूर्वार्ध में 'वाणी का विसर्ग' अर्थात् अव्यापार कहा है। वाणी का अव्यापार होने पर श्रवण-क्रिया नहीं हो सकती और श्रवण-क्रिया होने पर वाणी का व्यापाराभाव नहीं माना जा सकता। अतः यह श्लोक असम्बद्ध है।

१. द्र० भाग० १।४, ५ अ०।

२. भाग० १।४।३२॥

३. भाग० १।५, अ० ६।

४. भाग० १।३।२०—'ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात्' इत्यादि श्लोके विष्णोः सप्तदशोऽवतारो व्यास इति वर्ण्यते।

५. द्र० भाग० १०।८८ अ०। भस्मासुरस्य वास्तविकं नाम वृकासुर आसीत्, स च शकुनेरसुरस्य पुत्रः।

६. व्यास जी को नारायण का १७वाँ अवतार माना जाता है (भा० १।३।२०)।

दत्तवराय शिवेन दण्डः कथं दत्तः। यस्य क्रोधलेशेन सर्वं पञ्चभूतात्मकं जगद् भस्मीभूतं भवति, तस्य भयं कर्त्तुं कः समर्थः पुमान् भवेत्?

बाणासुरकथायामपि[1] शङ्करस्य निन्दा कृता—कृष्णेन शङ्करः पराजित[2] इति। कोऽपि शङ्करं पराजेतुं समर्थो नास्ति।

गृहस्थानामपि निन्दा कृता—कपोतगुरुकरणकथायां[3] गृहस्थाश्रमोऽश्रेष्ठ[4] इति।

यथा नदी नदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्॥[5]

श्रेष्ठ एव गृहाश्रमो व्यवहारे, अतोऽश्रेष्ठ इति कथनं यत् तत्प्रमत्तगीतमेव।

कोई कहे कि भस्मासुर को वर देने के कारण शिव ने दण्ड नहीं दिया, तो वर दिए हुए रावण को शिव ने क्यों दण्ड दिया? जिस शिव के भय से सारा पंचभूतात्मक जगत् भस्म (=प्रलय को प्राप्त) हो जाता है, उसको भयभीत करने में कौन मनुष्य समर्थ हो सकता है?

बाणासुर की कथा में भी शंकर की निन्दा की है—'**कृष्ण ने शंकर को हरा दिया।**' कोई भी शंकर को पराजित करने में समर्थ नहीं है।

गृहस्थियों की भी कपोत-गुरुकरण (=कबूतर को गुरु बनाना) कथा में निन्दा की है—'**गृहस्थाश्रम बुरा है।**'

'**जैसे छोटी-बड़ी नदियाँ समुद्र में पहुँचकर स्थिर हो जाती हैं, वैसे ही सब आश्रमी** (=ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी, संन्यासी) **गृहस्थ में**

---

१. द्र० भाग० १०।६३ अ०।
२. मोहयित्वा तु गिरीशं जृम्भास्त्रेण जृम्भितम्। भाग० १०।६३।१४॥
३. द्र० भाग० १०।७।३३ तथा ५२-७४॥
४. द्र०—पुष्णान् कुटुम्बं कृपणः सानुबन्धोऽवसीदति। भाग० १०।७।७३॥
५. मनु० ६।९०॥

कृष्णस्यापि निन्दा कृता रासमण्डलचीरलीला-कथायाम्।[1] परस्त्री-भिर्लीलां कृतवान्[2], नग्नदारा दृष्ट-वांश्चेति[3]।

अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः।
परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम्॥[4]

पापमिति शेषः।

नाग्निं मुखेनोपधमेन्नग्नां नेक्षेत च स्त्रियम्॥[5]

इत्याह भगवान् मनुः। अस्माद्विरोधाल्लोकविरोधाच्च प्रमत्तगीतमेतत्।

ही आश्रय को प्राप्त होते हैं' (अर्थात् इन सबके योगक्षेम का आधार गृहाश्रम ही होता है) [मनु के इस वचन के अनुसार] व्यवहार में गृहाश्रम श्रेष्ठ है, उसे बुरा बताना प्रमादी पुरुष का कथन है।

कृष्ण की भी रासमण्डल और चीरहरण-लीला में निन्दा की है—'**पराई स्त्रियों के साथ लीला की और नंगी स्त्रियों को देखा।**' '**विना दिए पदार्थों को ग्रहण करना, विधान के विना हिंसा करना, पराई स्त्रियों का सेवन करना, तीन प्रकार का शारीरिक पाप कहा गया है।**' और '**मुख से अग्नि को न फूँके, नंगी स्त्रियों को न देखे**' ऐसा मनु ने कहा है। [मनुस्मृति के साथ] विरोध होने से तथा लोक से विरुद्ध होने से [उक्त कथाएँ] प्रमादी पुरुष की कही हुई हैं।

---

१. रासमण्डल कथा, भाग० १०। २९-३३ अ०॥ चीरलीला=चीरहरण लीला, भाग० १०।२२ अ०॥
२. भाग० १०। अ० ३३—तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रतैः। स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः॥२॥ इत आरभ्य २६ श्लोकपर्यन्त रासक्रीडा द्रष्टव्या।
३. ततो जलाशयात् सर्वा दारिकाः शीतवेपिताः। पाणिभ्यां योनिमाच्छाद्य प्रोत्तेरुः शीतकर्षिताः॥ भाग० १०।२२।१७ इत्यारभ्य विंशश्लोकपर्यन्तं द्रष्टव्यम्।
४. मनु० १२।७॥
५. मनु० ४।५३॥

आप्तकामो यदुपतिः कृतवान् वै जुगुप्सितम्।
किमभिप्राय एतन्नः संशयं छिन्धि सुव्रत॥[१]

अत्रापि कृष्णस्य निन्दा कृता। सर्वज्ञः कृष्णः कदाचिज्जुगुप्सितं कर्म न कुर्यात्।

सुभद्राहरणकथायां[२] कृष्णार्जुनसुभद्राणां निन्दैव कृता—कृष्णः कपटरूपिणमर्जुनं महात्मास्तीति कथितवान्[३] इति, अर्जुनः कपटरूपं कृतवान्[४] इति सुभद्राऽपि निन्दितं कर्म कृतवती[५] इति।

आप्तकामो यदुपतिः० में भी कृष्ण की निन्दा की है।[६] सर्वज्ञ[७] कृष्ण कभी निन्दित कर्म नहीं कर सकता।

सुभद्राहरण कथा में कृष्ण, अर्जुन और सुभद्रा की निन्दा की है—'**कृष्ण ने कपट रूपधारी अर्जुन को महात्मा बताया, अर्जुन ने कपट रूप धारण किया और सुभद्रा ने भी निन्दित कर्म किया।**'[८]

---

१. भाग० १०।२३।२९॥
२. द्र० भाग १०।८६ अ०॥
३. एकदा गृहमानीय आतिथ्येन निमन्त्र्य तम्। भाग १०।८६।५॥
४. तल्लिप्सुः स यतिर्भूत्वा त्रिदण्डी द्वारकामगात्। भाग० १०।८६।३॥
५. सापि तं चकमे वीक्ष्य नारीणां हृदयङ्गमम्। हसन्ती व्रीडितापाङ्गी तन्न्यस्तहृदयेक्षणा॥ भाग० १०।८६।७॥
६. इस श्लोक में कहा है—'सब कामनाओं से पूर्ण कृष्ण ने रासक्रीड़ा जैसे निन्दित कर्म क्यों किए……।' अर्थात् कृष्ण को निन्दित कर्म करनेवाला बताया है।
७. पौराणिकों के मतानुसार कृष्ण को सर्वज्ञ मानकर यह पंक्ति लिखी है।
८. भागवत में कहा है कि 'अर्जुन ने सुना कि बलराम सुभद्रा का विवाह दुर्योधन से करना चाहते हैं तो अर्जुन भिक्षु का रूप बनाकर द्वारका पहुँचा और वहाँ उसने आसन जमाया। कृष्ण ने पहचानकर उसे अतिथि (=महात्मा) के रूप में भिक्षा के लिए आमन्त्रित किया। सुभद्रा उस भिक्षु के कान्त शरीर को देखकर उस पर आसक्त हो गई इत्यादि।

इन्द्रस्यापि गोवर्धनोद्धरणकथायां[१] निन्दा कृता—इन्द्रो लज्जितो बभूव[२] इति।

अष्टाशीतिसहस्राणामृषीणां महात्मनां निन्दैव कृता सप्ताहोत्थानकथायाम्[३]—तेषां मध्ये एकोऽपि परीक्षितं समाधातुं समर्थो नेति।[४]

ब्रह्मणोऽपि वत्सहरणहंसावतरणकथायां[५] निन्दैव कृता—अज्ञानी ब्रह्म[६] इति।

ततः पुष्करतः सृष्टस्सर्वज्ञो मूर्तिमान् प्रभुः।
ब्रह्मा वेदमयः साक्षात् प्रजापतिरनुत्तमः॥[७]

इति महाभारतविरोधात् प्रमत्तगीतमेतत्।

गोवर्धन-उद्धरण कथा में इन्द्र की भी निन्दा की—'**इन्द्र लज्जित हो गया।**'

सप्ताहोत्थान कथा में अस्सी सहस्र ऋषि-महात्माओं की निन्दा की—'**उनमें से एक भी परीक्षित की शंका का समाधान करने में समर्थ नहीं हुआ।**'

वत्सहरण और हंसावतरण कथा में ब्रह्मा की भी निन्दा की—'**ब्रह्मा को अज्ञानी**' कहा। [यह महाभारत के] '**पश्चात् कमलरूपा**

---

१. भाग० १०।२५॥
२. कृष्णयोगानुभावं तं निशम्येन्द्रोऽतिविस्मितः। निस्तब्धो भ्रष्टसंकल्पः स्वान् मेघान् स न्यवारयत्॥ भाग० १०।२५।२४॥
३. द्र० भागवत माहात्म्य ५।४१॥
४. अन्वेषणीयम्।
५. वत्सहरणकथा, भाग० १०।१३, १४ अ०॥ हंसावतरण कथा, भाग० ११।१३।१९, तथाग्रे।
६. अतः क्षमस्वाच्युत मे रजोभुवो ह्यजानतस्त्वत्पृथगीशमानिनः। अजावलेपान्धतमसोऽन्धचक्षुष एषोऽनुकम्प्यो मयि नाथवानिति॥ भाग० १०।१४।१०॥ एवमेव 'ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा पप्रच्छुः को भवानिति। भाग० ११।१३।२०॥
७. अनुपलब्धमूलमिदम्।

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित्॥[1]

महाभारताद् विरुद्धं यत्तन्न व्यासप्रोक्तमिति महाभारते। इदं तु भागवतं महाभारताद् विरुद्धमेवास्ति[2]। तस्मात् प्रमत्तगीतमेव।

वन्दे महापुरुषचरणारविन्दम्[3] [इति]

पृथिवी के निष्पादन के अनन्तर उत्पन्न किया सर्वज्ञ शरीरधारी प्रभु ब्रह्मा को, जो साक्षात् वेदमय और श्रेष्ठतम प्रजापति था' वचन से विरुद्ध होने से [भागवत का ब्रह्मा को अज्ञानी कहना] प्रमादी पुरुष का कथन है।

'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के विषय में हे भरतर्षभ, जो यहाँ (=महाभारत में कहा गया) है वही अन्यत्र (=अन्य ग्रन्थों में) है, जो यहाँ नहीं है, वह कहीं नहीं है' [इस वचन के अनुसार] महाभारत से जो विरुद्ध है वह व्यास जी का कहा नहीं है, ऐसा महाभारत में [कहा है]। यह भागवत महाभारत से विरुद्ध ही है[4], इसलिए प्रमत्तगीत है।

'प्रमाण करता हूँ हे महापुरुष तुम्हारे चरणारविन्दों को' यह कथन भी—

---

१. महाभारत आदि० ६२।५३, चित्रशाला-पूना-संस्करणे 'न तत् क्वचित्' इति चतुर्थचरणे पाठः।

२. महाभारते कृष्णस्य यच्चरितं व्यासेनोक्तम् तदत्यन्तं श्रेष्ठं वर्तते। तत्र कृष्णस्य किञ्चिदपि गर्हितं कर्म न निर्दिष्टम्। द्र० महाभारते सभापर्वणि अष्टात्रिंशत्तमेऽध्याये भीष्मकृतं कृष्णवर्णनम्, एकचत्वारिंशे चाध्याये शिशुपालकृतं कृष्णदोषवर्णनम्।

३. भाग ११।५।३३, ३४ उत्तरार्ध।

४. महाभारत में कृष्ण का चरित अत्यन्त श्रेष्ठ कहा है। शिशुपाल जैसे विरोधी को भी कृष्ण के चरित में कहीं भी कोई वास्तविक दोष दिखाने को नहीं मिला। देखिए महाभारत सभापर्व अ० ३८ में भीष्म द्वारा कृष्णाचरितवर्णन तथा अ० ४० में शिशुपाल द्वारा कृष्णादोषवर्णन।

द्यां मूर्धानं यस्य विप्रा वदन्ति
खं वै नाभिं सोमसूर्यौ च नेत्रे।
दिशः श्रोत्रे यस्य पादौ क्षितिश्च
ध्यातव्योऽसौ सर्वभूतान्तरात्मा॥ १॥[1]
यद्वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ २॥[2]
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ ३॥[3]

इत्यादिभ्यः श्रुतिभ्यो विरुद्धं चरणारविन्दवन्दनादिकमेव। अतोऽकथनीयम् अश्रवणीयं चेदं प्रमत्तगीतं भागवतम्।

द्यां मूर्धानम्० द्युलोक को जिसका शिर विप्र लोग कहते हैं, आकाश को नाभि, चन्द्र-सूर्य को दोनों नेत्र, दिशाओं को श्रोत्र। और जिसके पैर पृथिवी [कहे जाते हैं], ध्यान करने योग्य है वह सब भूतों का अन्तरात्मा।

यद्वाचा० जो वाणी से कहा नहीं जा सकता, जिसकी शक्ति से वाणी बोलती है, उसी को ब्रह्म तू जान, नहीं है यह जिसकी उपासना करता है।

यन्मनसा० जो मन से विचारा नहीं जा सकता, जिससे मनन-शक्ति को प्राप्त कर मन विचारता है उसी को ब्रह्म तू जान, नहीं है यह जिसकी तू उपासना करता है।

इत्यादि श्रुतियों के विरुद्ध ही है चरणारविन्द का वन्दन। इसलिए कहने और सुनने योग्य नहीं है यह प्रमत्तगीत भागवत।

---

१. वायुपुराण ९।१२०॥
२. केन उ० १।४॥
३. केन उ० १।५॥

पूर्वापरविरुद्धमप्यस्ति—

नृसिंहेन प्रह्लादाय वरो दत्तः—एकविंशतिपित्राद्यास्तव मोक्षं गच्छन्तु।[१] पुनरुक्तं प्रमत्तेन—तावेव रावणकुम्भकर्णौ बभूवतुः[२], पुनस्तावेव शिशुपालदन्तवक्रौ बभूवतु[३]रिति च विरुद्धमेव।

भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित्[४]

इति ब्रह्मणे वरो दत्तो नारायणेन। पुनरुक्तम्—ब्रह्मा मोहितो भूत्वा वत्सहरणं कृतवान्[५], इति विरुद्धमेव।

पूर्वापर विरुद्ध भी है—

नृसिंह ने प्रह्लाद को वर दिया—**तेरे इक्कीस पितादि मोक्ष को प्राप्त हों**। फिर कहा प्रमादी ने—**वे [हिरण्याक्ष-हिरण्यकश्यप] ही रावण और कुम्भकर्ण हुए,** और **पुनः वे ही शिशुपाल और दन्तवक्र** हुए। यह [परस्पर] विरुद्ध ही है।

भवान् कल्प०—'आप कल्प=सृष्टि और विकल्प=प्रलय में कभी मोह को प्राप्त नहीं होते'—ऐसा ब्रह्मा को वर दिया नारायण ने। पुनः कहा—'**ब्रह्मा ने मोहित होकर [गोपों की गौवों के] बछड़ों का हरण किया**'। यह विरुद्ध ही है।

---

१. त्रिः सप्तभिः पिता पूतः पितृभिः सह तेऽनघ। भाग० ७।१०।१८॥
२. पुनश्च विप्रशापेन राक्षसौ तौ बभूवतुः। कुम्भकर्णदशग्रीवौ''''। भा० ७।१०।३६॥
३. ताविहाथ पुनर्जातौ शिशुपालकरूषजौ। भाग० ७।१७।३८॥ करूषजस्यैव नाम दन्तवक्र आसीत्। द्र० भाग० ९।२४—श्रुतदेवां तु करूषो वृद्धशर्मा समग्रहीत्। यस्यामभूद् दन्तवक्रः ऋषिशप्तो दितेः सुतः। काशीसंस्करणे—'कारूषो', 'दन्तवक्त्रः', 'ऋषिसप्तो' पाठा अशुद्धा सन्ति।
४. भाग २।९।३६॥
५. द्र० भागवत १०।१४।१०; पूर्व पृष्ठ १३, टि० १ निर्दिष्टौ श्लोकौ।

कृष्णो नग्नां बाणासुरमातरं न दृष्टवान्[१]। पुनरुक्तं प्रमत्तेन—'चीरलीलां कृतवान्'[२] इति विरुद्धमेव।

भस्मासुरकथायां शिवस्य निन्दां[३] कृत्वा पुनर्विषपानकथायां[४] 'भवानेव विष्ण्वादीनामीश्वरः'[५] इति विरुद्धमेव।

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः[६] इति श्रुतेः, नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते[७] इति स्मृतेश्च, एवं सति 'भक्तिरेव मोक्षदात्री'[८] इति वेदादिभ्यो विरुद्धमेव।

कृष्ण ने बाणासुर की नंगी माता को नहीं देखा। पुनः कहा प्रमादी ने—**चीरहरण लीला की** (उसने स्नान करती हुई स्त्रियों के वस्त्र उठा लिये और वस्त्र लेने के लिए उनको नंगी बाहर आने पर बाध्य किया) यह परस्पर विरुद्ध है।

भस्मासुर को कथा में शिव की निन्दा करके पुनः विषपान-कथा में '**आप ही विष्णु आदि के ईश्वर हैं**' [कहा] यह परस्पर विरुद्ध है।

'**विना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती**' यह श्रुति का [वचन है] और '**न ही ज्ञान के सदृश पवित्र इस संसार में है**' यह स्मृति (=गीता) का [वचन है]। ऐसा होने पर '**भक्ति ही मोक्षदायिनी है**' यह कथन वेदादि शास्त्रों से विरुद्ध ही है।

---

१. तन्माता कोटरा नाम नग्ना मुक्तशिरोरुहा।''''ततस्तिर्यङ्मुखो नग्नामनिरीक्षन् गदाग्रजः॥ भाग० १०।६३।२०, २१॥
२. द्र० भाग० १०।२२।१७-२०॥
३. द्र० भाग० १०।८८ अ०॥
४. भाग० ८।७।२०-४५॥
५. भाग० ८।७।२१-३७ श्लोकानां सारोऽयम्।
६. अनुपलब्धमूलम्।
७. गीता ४।३८॥
८. द्र० भाग० माहात्म्य अ० ६, श्लोक ८३—भक्त्या विमुच्येन्नरः। भाग० ११।१४।१८-२५ द्रष्टव्य।

अतः कुग्रन्थस्य भागवताख्यस्यास्य कर्ता मूर्ख एव। अस्मात् कारणात् सुखेप्सुभिः कदाचिदिदं प्रमत्तगीतं न कथनीयं न श्रोतव्यं चेति सिद्धान्तः। ये तु लोभाच्छ्रावयन्ति मूर्खत्वाच्छृण्वन्ति ते वै नरके पतिष्यन्ति। ये प्रमत्तगीतमिदं भागवतं श्रावयन्ति शृण्वन्ति च ते सर्वे पाषण्डिनः अत एव महापातकिनः सन्ति। यश्च कथितवान् बोपदेवः सोऽपि पाषण्डी महापातकी चास्ति। अत एव प्रमत्तगीतस्यास्य भागवतस्याध्ययनमध्यापनं श्रवणं च नरकगमनमेव। किं बहुना लेखेन, एतावतैव वेदितव्यं युष्माभिः। एवमेव

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरश्च[१]

इत्यादि श्लोकैर्निर्मितमिदं भागवतं सर्वमशुद्धमिति।

कथं तर्हि श्रीधरादिभिरशुद्धस्योपरि टीका कृता?

इसलिए भागवत नाम के इस कुग्रन्थ का कर्ता मूर्ख ही है। इस कारण सुख चाहनेवालों को कभी इस प्रमत्तप्रगीत भागवत की कथा और श्रवण नहीं करना चाहिए, यही सिद्धान्त है। जो लोग लोभ से सुनाते हैं और मूर्ख होने से सुनते हैं, वे निश्चय ही नरक में पड़ेंगे। जो प्रमत्तगीत इस भागवत को सुनाते और सुनते हैं वे सब पाखंडी हैं, इसलिए वे महापातकी हैं। जिस बोपदेव ने इस भागवत को कहा (=रचा) वह भी पाखंडी और महापातकी है। इसलिए प्रमत्तगीत इस भागवत का अध्ययन, अध्यापन, कथन, श्रवण करना नरक-गमन का कारण है। बहुत लिखने से क्या, इतने से ही आप लोगों को जान लेना चाहिए। इसी प्रकार **जन्माद्यस्य०** आदि श्लोकों से बनाया गया यह भागवत सारा ही अशुद्ध है।

तो श्रीधर ने इस अशुद्ध [भागवत] पर कैसे टीका लिखी? अज्ञान से। उन श्रीधरादि में यह अज्ञान कैसे [जाना जाए]?, यह

---

१. भाग० १।१।१॥

अज्ञानात्। कुत एतदज्ञानत्वं तेषु श्रीधरादिषु? न ज्ञातमशुद्धं तैः, अतोऽज्ञानत्वमेव।

सत्यं परं धीमहि[१] इत्यत्र शिष्याभिप्रायं बहुवचनम्[२] इत्युक्तवान् प्रमत्तः श्रीधर इति। शिष्यास्तु युष्मदि वर्तन्ते,[३] कुतोऽभिप्रायस्तत्रायातः[४]? एकोऽपि ब्रूयादेव 'अहं ब्रवीमि', 'वयं ब्रूमो' वा। अस्मदो द्वयोश्च[५] इति व्याकरणसूत्रात्। अतोऽशुद्धमेतत् 'शिष्याभिप्रायं बहुवचनम्' इति।

अन्यकृतमिति न शङ्कनीयम् इत्युक्तं श्रीधरेण। 'प्राप्तौ सत्यां निषेधः'[६] अतोऽन्यकृतमेव।

अशुद्ध है ऐसा उन्होंने नहीं जाना, इससे अज्ञान ही है।

सत्यं परं धीमहि—इसमें **'शिष्यों के अभिप्राय से बहुवचन है'** ऐसा प्रमादी श्रीधर ने कहा है। शिष्यों का निर्देश 'युष्मद्' से होता है [इसलिए] उनका अभिप्राय कहाँ से आया? [अर्थात् उनके अभिप्राय से 'धीमहि' में बहुवचन कैसे हो सकता है?] एक व्यक्ति भी कह सकता है—'मैं कहता हूँ' अथवा 'हम कहते हैं' **अस्मदो द्वयोश्च** (=अस्मद् शब्द से दो और एक में बहुवचन का प्रयोग होता है) इस व्याकरण-सूत्र के नियम से। इसलिए 'शिष्यों के अभिप्राय से बहुवचन है' कहना अशुद्ध ही है।

'यह भागवत अन्यकृत है (=व्यासकृत नहीं है) ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए' ऐसा श्रीधर ने लिखा है। **'प्राप्ति होने पर ही निषेध किया जाता है'** इस न्याय से अन्यकृत ही [भागवत है, ऐसा जानना चाहिए]।

---

१. भाग० १।१।१॥ २. भाग० १।१।१ टीकायाम्।
३. शिष्यान् प्रति भागवतस्य प्रवचनात्—'हे शिष्याः'''वयं सत्यं परं धीमहि, तद्यूयं शृणुत' इत्यभिप्रायात्।
४. 'धीमहि' क्रियांशे शिष्याणामन्वयाभावात्।
५. अष्टा० १।२।५९॥ ६. लौकिकोऽयं न्यायः।

नायं श्रीधरनामा। कस्तर्हि? दरिद्रधरनामैवास्ति। कुतः? मूर्खत्वात्। किं बहुना लेखेन! श्रीधरादिनां ज्ञानमेव नास्ति वेदादिषु इति स्थालीपोलाकन्यायवल्लेखनं कृतमस्माभिः। तद् युष्माभिर्वेदितव्यम्—सर्वं भागवतमशुद्धम् इति।[1]

ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्रा वर्णाः, ब्रह्मचारिगृहिवनिसंन्यासिन आश्रमाश्च ज्ञातव्याः। एषां वेदेषु मनुस्मृतौ च धर्मा उक्ताः। एभ्यो ये विरोधिनस्ते पाषण्डिन एव। किं लक्षणास्ते? चक्राद्यङ्कनकेवलोर्ध्वपुण्ड्रकाष्ठमालाधारिणः। तप्तमुद्रोर्ध्वपुण्ड्रे द्वे नरकवाससाधने। तस्मात् त्याज्यमनघैर्द्विजैर्नरकभीरुभिरिति जाबालिः—

यह [भागवत का टीकाकार] **श्रीधर** (लक्ष्मी=विद्या का धारण करनेवाला) नाम वाला भी नहीं है, अपितु **दरिद्रधर** (=दारिद्र्य=मौर्ख्य का धारण करनेवाला) नामवाला ही है। क्यों? मूर्ख होने से। बहुत लिखने से क्या? श्रीधरादि को वेदादि के विषय में ज्ञान ही नहीं है यह हमने स्थालीपुलाक-न्याय से लिखा है। इसलिए आप लोगों को जानना चाहिए कि सारा भागवत ही अशुद्ध है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण तथा ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी ये चार आश्रम जानने चाहिएँ। इनके धर्म वेदों तथा मनुस्मृति में कहे हैं। उनसे जो विपरीत हैं वे पाखंडी ही हैं। उनका क्या लक्षण है? चक्र आदि से शरीर के दागने, ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक और काठ (=तुलसी आदि) की माला का धारण करनेवाले। गरम चक्र आदि से मुद्रा करना (=दागना) और ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाना नरकगमन के साधन हैं। इसलिए ये त्याज्य हैं। नरक से डरनेवाले श्रेष्ठजनों द्वारा ऐसा जाबालि ने 'विभूति का धारण छोड़कर और रुद्राक्ष का धारण

१. भागवतं तट्टीका चेत्यभिप्रायः।

विभूतिधारणं त्यक्त्वा त्यक्त्वा रुद्राक्षधारणम्।
मां मा पूजय विश्वेशं शिवलिङ्गरूपिणम्॥[1]

इत्याह विष्णुपुराणे।

'यज्ञो वै विष्णुः'[2] इति श्रुतेर्यज्ञकर्ता वैष्णवो नान्यः।

बृहन्नारदीये पुराणे धर्मभगीरथसंवादे भगीरथं प्रति धर्मराजवाक्यम्—

यस्तु संतप्तप्रशङ्खादिलिङ्गाङ्कितनुर्नरः।
स सर्वयातनाभागी चाण्डालः कोटिजन्मसु॥[3]

एतल्लक्षणाः पाषण्डिनः। ये तु पाषण्डिमतविश्वासिनस्तेऽपि पाषण्डिनः।

पाषण्डिनो विकर्मस्थान् बैडालव्रतिकान् शठान्।
हैतुकान् वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्॥[4]

छोड़कर मुझ शिवलिंगरूपी विश्वेश की पूजा मत कर' ऐसा विष्णु पुराण में कहा है।

'यज्ञ ही विष्णु है' ऐसा श्रुति का कथन होने से यज्ञ का करनेवाला ही वैष्णव (=विष्णुभक्त) है, अन्य नहीं।

बृहन्नारदीय पुराण में धर्म-भगीरथ के संवाद में भगीरथ के प्रति धर्मराज का वाक्य है—'**जो अत्यन्त तपाए हुए शंख आदि से अंकित शरीरवाला मनुष्य है, वह सर्व दुःखों का भागी तथा करोड़ों जन्म तक चाण्डाल होता है।**' इसलिए इस प्रकार के चिह्नवाले पाखंडी हैं और जो पाखंडियों के मत के विश्वासी हैं वे भी पाखंडी हैं।

'पाखंडियों, बुरे कर्म करनेवालों, बैडालव्रत वालों, शठों, कुतर्कियों और बगुलाभक्तों का वाणीमात्र से भी सत्कार न करे'

१. अनुपलब्धमूलमिदम्।
२. शत० १३।१।८।८॥ कौ० ब्रा० ४।२, १८।८, १४ इत्येवं बहुत्र।
३. अनुपलब्धमूलमिदम्। ४. मनु० ४।३०॥

इत्याह मनुः। अत एव वाङ्मात्रेणापि पाषण्डिभिस्सह व्यवहारो न कर्तव्यः।

पाषाणादिमूर्तिपूजनं पाषण्डिमतमेव। कुत एतत्? वेदादिभ्यो विरोधात्—

यद् वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ १॥[1]
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्। तदेव०॥ २॥[2]
यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते।
तदेव०॥ ३॥[3]

इत्यादि श्रुतिभ्यः। अत एव पाषाणादिकृत्रिम[4]मूर्ति-पूजनं वृथैव।

ऐसा मनु ने कहा है। इसलिए वाणीमात्र से भी पाखंडियों के साथ व्यवहार नहीं रखना चाहिए।

पाषाणादि मूर्तियों का पूजन पाखंडी मत ही है। क्यों? वेदादि से विरुद्ध होने से।

'जो वाणी से नहीं कहा जाता, जिससे वाणी बोलने में समर्थ होती है, उसे ही ब्रह्म तू जान, नहीं है यह जिसकी उपासना करता है।'

'जो मन से नहीं विचारा जाता, जिससे मन विचारने में समर्थ होता है, उसे ही०।'

'जो प्राणवायु से जीवित नहीं होता, जिससे प्राण गति करता है, उसे ही०।'

इत्यादि श्रुतियों से [विरुद्ध है]। इसलिए पाषाण आदि की कृत्रिम मूर्तियों की पूजा व्यर्थ है।

---

१. केन उ० १।४॥ २. केन उ० १।५॥
३. केन उ० १।१॥
४. 'कर्त्रिम' इति पूर्वमुद्रितोऽपपाठः।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।[1]

इति भगवद्गीतावचनात्।

किं बहुना लेखेन, एतावतैव सज्जनैर्वेदितव्यम् विदित्वाऽऽचरणीयमेव।

दयानन्दसरस्वत्याख्येन स्वामिना निर्मितमिदं पत्रं वेदितव्यं विद्वद्भिरिति। शुभं भवतु वक्तृभ्यश्श्रोतृभ्यश्च।

वेदोपवेदवेदाङ्गमनुस्मृति - महाभारत - रिवंशपुराणानां वाल्मीकिनिर्मितस्य रामायणस्य चाध्यापनमध्ययनं कर्तव्यं कारयितव्यं च, एतेषामेव श्रवणं कर्तव्यमिति।

'मूर्ख लोग अव्यक्त (=अप्रकट रहनेवाले) मुझ को व्यक्त (=प्रकट हुआ=शरीर धारण किया हुआ) मानते हैं' इस भगवद्गीता के वचन से भी।

बहुत लिखने से क्या? इतने से ही सज्जनों को जान लेना चाहिए और जानकर [उनके अनुसार] आचरण करना चाहिए।

दयानन्द सरस्वती नाम के स्वामी ने यह [विज्ञापन] पत्र बनाया है, ऐसा विद्वानों को जानना चाहिए। कल्याण हो वक्ताओं और श्रोताओं के लिए!

वेदउपवेदवेदांगमनुस्मृतिमहाभारतहरिवंशपुराण आदि और वाल्मीकि-निर्मित रामायण का पठन-पाठन करना-कराना चाहिए, और इन्हीं का श्रवण करना चाहिए।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितस्य भागवतखण्डनस्य युधिष्ठिरमीमांसकविहित आर्यभाषानुवादः समाप्तः।

शुभं भूयाल्लेखक-पाठकयोः!!

---

१. गीता ७।२४॥

परिशिष्ट
भागवत-खण्डन और सत्यार्थप्रकाश की तुलना

ऋषि दयानन्द ने भागवत-खण्डन पुस्तक लिखने के लगभग ८ वर्ष पश्चात् सत्यार्थप्रकाश नामक ग्रंथ लिखा। यह सं० १९३२ (सन् १८७५) में प्रकाशित हुआ। इसके लगभग ७-८ वर्ष पश्चात् सं० १९३९ में सत्यार्थप्रकाश का संशोधित संस्करण तैयार किया, जो सं० १९४० में प्रकाशित हुआ। ग्रंथकार द्वारा स्वयं संशोधित होने के कारण यद्यपि द्वितीय संस्करण ही प्रामाणिक है, तथापि तुलना के लिए हम यहाँ दोनों संस्करणों के पाठ उद्धृत करते हैं। सत्यार्थप्रकाश के दोनों संस्करणों में भागवत पुराण के खण्डन में जो कुछ लिखा है, उसके कई अंश प्रस्तुत भागवतं-खण्डन पुस्तक के साथ प्रायः मिलते हैं। यथा—

१. **भागवत-खण्डन**[१]—शुक तो भारतयुद्ध से पूर्व ही मोक्ष को प्राप्त हो गया था, ऐसा महाभारत के शान्तिपर्व में लिखा है। इसलिए अशुद्ध ही है—शुक ने परीक्षित के लिए भागवत कहा।[२] पृष्ठ २।

१. यद्यपि भागवत-खण्डन मूल रूप से संस्कृत में है, तथापि तुलना के लिए हम उसका आर्यभाषानुवाद ही दे रहे हैं।

२. महाभारत शान्तिपर्व के अन्तर्गत मोक्ष-धर्म प्रकरण में (अ० ३३३) में भीष्म ने शुकदेव की मोक्षप्राप्ति कथा कही है। शान्तिपर्व की समस्त कथाएँ भारतयुद्ध के पश्चात् भीष्म ने महाराज युधिष्ठिर के प्रति कही हैं।

सत्यार्थप्रकाश प्र० सं०—शुकाचार्य व्यास जी का पुत्र, परीक्षित के जन्म से १०० वर्ष पहले ही मर गया था; परीक्षित का जन्म पीछे भया, सो मोक्ष-धर्म में महाभारत के लिखा है। फिर जो मनुष्य कहते हैं कि शुकाचार्य ने सप्ताह सुनाया सो केवल मिथ्या है; क्योंकि उस समय शुकाचार्य का शरीर नहीं था। पृष्ठ ३६५।

२. **भागवत-खण्डन—'ज्ञानं परमं गुह्यं मे यद्विज्ञान-समन्वितम्'** जो परम गुह्य ज्ञान होता है वह विज्ञान ही होता है। अतः पुनः 'विज्ञानसमन्वितम्' (=विज्ञान से युक्त कहना) व्यर्थ है। इसी प्रकार चतुःश्लोकी अशुद्ध है। पृष्ठ ३।

सत्यार्थप्रकाश प्र० सं०—चतुःश्लोकी[१] सब भागवत का मूल मानते हैं—

ज्ञानं परमं गुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम्।
सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया॥

इत्यादिक चार श्लोक बना लिये हैं। क्योंकि परम और गुह्य ये दोनों ज्ञान के विशेषण होने से वही विज्ञान हो जाता है, फिर **यद्विज्ञानसमन्वितं** यह जो उसका कहना सो मिथ्या हो जाता है, क्योंकि रहस्य नाम एकान्त और गुह्य का ही है। **परमज्ञान** के कहने से तदङ्ग अर्थात् मुक्ति का अंग है; यह उसका कहना मिथ्या ही है क्योंकि परमज्ञान जो होता है सो मुक्ति का अंग ही होता है। जैसा यह श्लोक मिथ्या है वैसा सब भागवत भी मिथ्या है····। पृष्ठ ३६५।

स० प्र० द्वि० सं०—अब जिसको 'श्रीमद्भागवत' कहते हैं, उसकी लीला सुनो। ब्रह्मा जी को नारायण ने चतुःश्लोकी[२] भागवत का उपदेश किया—

१. भाग० २।९।३१-३४ तक मूल भागवत चतुःश्लोकी। आगे उद्ध्रियमाण श्लोक चतुःश्लोकी की भूमिकारूप है।

२. द्रष्टव्य टि० १।

ज्ञानं परमं गुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम्।
सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया॥

भा० स्कं० २ । ९ । ३०

हे ब्रह्मा जी, तू मेरा परम गुह्य ज्ञान जो विज्ञान और रहस्ययुक्त और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का अंग है उसी का मुझ से ग्रहण कर।

जब विज्ञानयुक्त कहा तो परम [अर्थात् श्रेष्ठ] ज्ञान का विशेषण रखना व्यर्थ है और गुह्य विशेषण से रहस्य भी पुनरुक्त है। जब मूल श्लोक अनर्थक है तो ग्रंथ अनर्थक क्यों नहीं? पृष्ठ ३३२।

३. **भागवत-खण्डन**—'**निगमकल्पतरोः**' इस श्लोक में वेद की निन्दा की है। पृष्ठ ६।

सत्यार्थप्रकाश प्र० सं०—फिर भी **निगम-कल्पतरोर्गलितं फलम्** इत्यादिक श्लोकों से केवल वेदों की निन्दा ही किई है····। पृष्ठ ३६८।

४. **भागवत-खण्डन**—व्यास-नारद-संवाद में व्यास की निन्दा की है—'व्यास जी शोकातुर हो गए थे, वहाँ नारद मुनि पहुँचे और उन्होंने व्यास जी का शोक दूर किया।' व्यास जी नारायण के अवतार कहे गए हैं[1] तब उन्हें शोक कैसे हो सकता है? पृष्ठ ६।

सत्यार्थप्रकाश प्र० सं०—व्यास जी ने वेद-वेदांग विद्याओं को पढ़ लिया····फिर भी सरस्वती नदी के तट में एक वृक्ष के नीचे शोकातुर होके जैसे रोते होते, वैसे बैठे थे। उस समय में वहाँ नारद आए····नारद जी बोले—तुमने भागवत कथा नहीं किई और ऐसा ग्रंथ भी कोई नहीं बनाया जिसमें भागवत-कथा हो, सो आप भागवत बनावें, कृष्ण

१. द्र० भाग० १।३।२० में व्यास को नारायण का १७वाँ अवतार कहा है।

जी के गुणयुक्त तब आपका चित्त शान्त होगा। इसमें विचार करना चाहिए कि व्यास जी जो नारायण के अवतार होते तो उनको अज्ञान शोक और मोह क्यों होता और उनको अज्ञानादिक थे, जो अज्ञानी का बनाया जो भागवत, उसका प्रमाण नहीं हो सकता। फिर इस कथा में वेदादिकों की केवल निन्दा आती है क्योंकि वेदादिकों के पढ़ने से व्यास जी को ज्ञान नहीं भया तो हम लोगों को कैसे होगा? पृष्ठ ३६७-३६८।

५. **भागवत-खण्डन**—कृष्ण की भी रासमण्डल और चीरहरण-लीला में निन्दा की है—पराई स्त्रियों के साथ लीला की और नंगी स्त्रियों को देखा। पृष्ठ ८।

सत्यार्थप्रकाश प्र० सं०—श्रीकृष्ण विद्वान् धर्मात्मा और जितेन्द्रिय थे, ऐसा महाभारत की कथा से यथावत् निश्चित होता है। श्रीकृष्ण की जैसी निन्दा इसने कराई ऐसी किसी की न होगी। क्योंकि उसने रासमण्डल की कथा लिखी, उसमें ऐसी-ऐसी बातें लिखीं जिस्से यथावत् श्रीकृष्ण की निन्दा होय[1]····। इनमें विचारना चाहिए कि श्रीकृष्ण धर्मात्मा थे, ऐसी काम कभी नहीं करेंगे और जो श्रीकृष्ण ऐसा कर्ते तो कुम्भीपाक से कभी न निकलते, इस्से श्रीकृष्ण ने कभी ऐसा काम नहीं किया क्योंकि वे बड़े धर्मात्मा थे। पृष्ठ ३७०-३७१।

स० प्र० द्वि० सं०—देखो श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण-कर्म-स्वभाव और चरित्र आप्तपुरुषों के सदृश है, जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरणपर्यन्त बुरा काम कुछ

१. आगे भागवत में वर्णित रासलीला का संक्षेप से वर्णन किया है।

भी किया हो ऐसा नहीं लिखा[१] और इस भागवतवाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाए हैं। दूध, दही, मक्खन की चोरी लगाई, कुब्जा दासी से समागम, परस्त्रियों से रासमण्डल में क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्ण जी में लगाए। पृष्ठ ३३६।

६. **भागवत-खण्डन**—नृसिंह ने प्रह्लाद को वर दिया—तेरे २१ पितादि मोक्ष को प्राप्त हों। फिर कहा प्रमादी ने—वे [हिरण्याक्ष-हिरण्यकश्यप] ही रावण और कुम्भकर्ण हुए और पुनः वे ही शिशुपाल और दन्तवक्र हुए। यह परस्पर विरुद्ध ही है। पृष्ठ ११।

सत्यार्थप्रकाश प्र० सं०—प्रह्लाद ने कहा कि मेरे पिता का मोक्ष होय। तब नृसिंह बोले कि मेरे वर से २१ पुरुषों का मोक्ष हो गया, तेरे पितादिकों का····। फिर उसने लिखा कि हिरण्याक्ष-हिरण्यकश्यप ही रावण, कुम्भकर्ण, शिशुपाल और दन्तवक्र होते भए, फिर सद्गति किनकी भई? यह बड़ी मिथ्या बात है। पृष्ठ ३६७।

सत्यार्थप्रकाश द्वि० सं०—नृसिंह ने [प्रह्लाद को] वर दिया—तेरे २१ पुरुष सद्गति को गए।····और फिर वे ही हिरण्याक्ष-हिरण्यकश्यप, रावण-कुम्भकर्ण, पुनः शिशुपाल-दन्तवक्र उत्पन्न हुए तो नृसिंह का वर कहाँ उड़

१. महाभारत में श्रीकृष्ण का चरित्र विभिन्न स्थानों पर बिखरा हुआ है। पुनरपि ऋषि दयानन्द के उक्त कथन की सत्यता जाँचने के लिए हम सभापर्व के शिशुपालवध प्रकरण में अ० ३८ के श्लोक ६-२२ तक भीष्म द्वारा वर्णित कृष्णचरित तथा अ० ४१ में शिशुपाल द्वारा कथित कृष्णदोष वर्णन की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हैं। यदि कृष्ण ने अपने जीवन में कुछ भी बुरा कार्य किया होता (जैसे भागवत में बताए हैं) तो शिशुपाल उन्हें गिनाने से कभी न चूकता। परन्तु वह कृष्ण के किसी दुराचरण का निर्देश न कर सका। इससे स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण का चरित स्फटिक के समान निर्मल था।

गया? ऐसी प्रमाद की बातें प्रमादी करते-सुनते और मानते हैं, विद्वान् नहीं। पृष्ठ ३३३-३३४।

७. **भागवत-खण्डन—भवान् कल्प०** 'आप कल्प=सृष्टि और विकल्प=प्रलय में कभी मोह को प्राप्त नहीं होते' ऐसा ब्रह्मा को वर दिया नारायण ने। पुनः कहा—'ब्रह्मा ने मोहित होकर बछड़ों का हरण किया है।' यह विरुद्ध ही है। पृष्ठ ११।

सत्यार्थप्रकाश प्र० सं०—ब्रह्मा जी को नारायण जी ने वर दिया कि—

भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित्।

जब तक सृष्टि है उसका नाम कल्प और जब तक प्रलय बना रहे उसका नाम विकल्प, तो नारायण जी ने ब्रह्मा जी से कहा कि तुमको कभी मोह न होगा, फिर वत्सहरण कथा में लिखा कि ब्रह्मा मोहित हो गए और बछड़े को हर लिया और उन्हीं ब्रह्मा ने तो कहा था कि आप वसुदेव और देवकी के घर में जन्म लीजिए, फिर कैसी गाढ़ी भाँग पी लिये कि झट भूल गए कि यह गोप है वा विष्णु का अवतार है और भागवत बनानेवाले ने ऐसा नशा किया कि बड़ा अन्धकार इसके हृदय में है कि ऐसा बड़ा पूर्वापर-विरुद्ध लिखता है। पृष्ठ ३६९-३७०।

सत्यार्थप्रकाश द्वि० सं०—ब्रह्माजी को वर दिया था कि—

भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित्

भाग० स्कं० २।९।३६

आप कल्प=सृष्टि और विकल्प=प्रलय में भी मोह को कभी न प्राप्त होंगे। ऐसी लिखकर पुनः दशम स्कन्ध में 'मोहित होके वत्सहरण किया।' इन दोनों में से एक बात सच्ची और दूसरी झूठी होकर दोनों झूठी। पृष्ठ ३३२।

८. भागवत-खण्डन—यह हमने स्थालीपुलाक-न्याय से लिखा है। इसलिए आप लोगों को जानना चाहिए कि सारा भागवत ही अशुद्ध है। पृष्ठ १३।

सत्यार्थप्रकाश प्र० सं०—ऐसी-ऐसी बातें लोगों ने मिथ्या बना लई हैं कि भागवत के विषय में हमने थोड़े-से दोष देखाए हैं, परन्तु भागवत सब दोषरूप ही है। पृष्ठ ३७२।

समाप्त